वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL

नवंबर-दिसम्बर 2022







HEADQUARTER HINDUSTAN GADAR PARTY

अंदर पढ़ें :

किसी भी जीवन की कीमत उतनी ही ज्यादा होती है, जितने बड़े उद्देश्य के लिए उसे लगाया जाता है ....चार्लस डिकन

साबिरअली साबिर (पंजाबी कवि पाकिस्तान) की कविताएं

रास्ता

देखा जाए
पूछा जाए
बताया जाए
मोड़ा जाए
बदला जाए
लेकिन
रोका न जाए।

असर

चौधरियों का
कुत्ता भी
अब
उन्हीं जैसा
हो गया है।

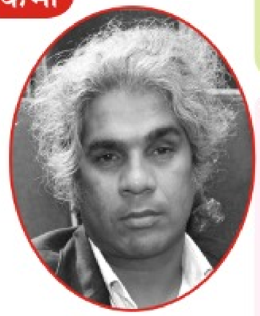
सांस

सांस
जिंदा होने की
दलील नहीं

बात

जब कहीं
मैंने बात
दुनिया गूंगी बहरी हो गई
मेरी बात में
बात ही कुछ ऐसी थी

कभी कभी



कभी कभी
तो
यूं लगता है
सांस
और
आह है
बाकी सब
अफवाह है

तसल्ली

धूल के बवंडर में
नाचता सूखा पत्ता
देखा
तो
टल गई
मायूसी

विनती

हमारे कन्धों पर
कंकरीट के गार्डर रख के
सड़क ना बनाओ
हम
एक टांग पर
खड़े हैं

पंजाबी से अनुवाद : सुरेंद्र पाल सिंह

भाग्य और भगवान कमजोर मनो को तसल्ली देने के बहाने हैं
... शहीद भगत सिंह

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028

संपादक
बलवंत सिंह
tarksheeleditor@gmail.com
94163 24802

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार गिल, कनेडा
अछर सिंह खरलवीर, कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44 748 635 1185)
मा. भजन सिंह कनेडा
बलदेव रहिपा, टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
द्विवार्षिक : 200/- रू.
विदेश : वार्षिक : 25 यू.एस.डॉलर

रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

प्रा. बलवंत सिंह, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी, संपादक, मकान न. 1062, आदर्श नगर, पिपली, जिला कुरूक्षेत्र-136131 (हरियाणा) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट से मुद्रित करके तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण हेतु जारी किया।

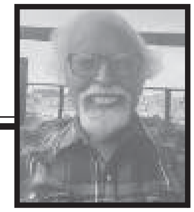
इस अंक में

संपादकीय

01 नवंबर 1913 का दिन एक विशेष ऐतिहासिक महत्व रखता है। ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ़ विदेशी धरती से 'युद्ध' की घोषणा करने वाली पार्टी ''हिन्दी ऐसोसियेशन आफ़ द पेसिफिक कोस्ट'' (बाद में ग़दर पार्टी) के मुखपत्र ''ग़दर'' का प्रथम अंक इस दिन प्रकाशित हुआ था, जिस के प्रथम संपादकीय में लिखा गया था: ''आज का दिन, 01 नवंबर, 1913 भारतवर्ष के इतिहास में नये युग की शुरूआत है, क्योंकि आज यद्यपि विदेशी भूमि पर परन्तु अपनी भाषा में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध युद्ध आरम्भ होता है.....शीघ्र ही वह समय आएगा, जब बंदूकों और खून, कलमों और स्याही का स्थान ले लेंगे।'' अख़बार का नामकर्ण ''ग़दर'' 1857 के विद्रोह से प्रेरणा लेकर उसे स्मरण करते हुए रखा गया था। 1857 का ग़दर (जिसे यह नाम ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने दिया था) भारतीय लोगों का विद्रोह था, देश के स्वतंत्रता संग्राम का एक मील पत्थर था। इस से ब्रिटिश सल्तनत की तो यद्यपि समाप्ति नहीं हुई थी, परन्तु ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपना काम समेटना पड़ गया था। ताज (Crown) ने सीधे तौर पर भारतवर्ष का शासन अपने हाथ में ले लिया था। 1857 के विद्रोह के पश्चात् भी यद्यपि छोटे-छोटे संग्राम चलते रहे, परन्तु असफलता ने जो रुकावट पैदा की, उस गतिहीनता को ग़दर पार्टी की स्थापना ने एक बार में ही बड़ी चोट पहुँचा कर तोड़ दिया। भारतवर्ष के इन क्रांतिकारी संघर्षों को डी.डी. कौशम्बी, रोमिला थापर, आर.एस. शर्मा, डी. एन. झा, विपिन चन्द्र जैसे भारत के प्रख्यात जनपक्षीय इतिहासकारों ने बखूबी चित्रित किया है। उन्होंने राजाओं-महाराजाओं के कसीदे पढ़ने के स्थान पर तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों पर फोक्स (केन्द्रित) किया है। इतिहास लेखन के बारे में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए प्रख्यात इतिहासकार, स्वतन्त्रता संग्रामी का. सोहन सिंह जोश लिखते हैं: ''जो इतिहास अपनी मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता के प्रति प्रेम को प्रकट नहीं करता, जो लोगों को देश भक्ति एवं आत्म बलिदान की प्रेरणा नहीं देता, जो कड़वे से कड़वे शब्दों में गुलाम-चालकों, उनके पिठ्ठुओं और देशद्रोहियों के कुकर्मों की निंदा नहीं करता, वह इतिहास व्यर्थ है- कूड़े के ढेर पर फैंकने के योग्य है।'' इस कसौटी पर खरा उतरते हुए 1857 का ग़दर, गदर लहर, बब्बर अकाली लहर, हिन्दोस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ का संग्राम, प्रजामण्डल लहर आदि भारतीय इतिहास के सुनहरे पन्ने हैं। ग़दर पार्टी ने भारतीय प्रवासियों की चेतना में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न किया। गुलामी को खत्म करके आजादी को लाने के विचार उन के मनों में घर करने लग गए। यही वह गतिशील भावना है जिस के साथ मानवता के इतिहास का सृजन किया जाता है। ग़दर पार्टी के योद्धाओं ने सैंकड़ों की संख्या में फांसी के रस्सों को चूमा, अंग्रेजों की गोलियों का शिकार हुए। हजारों ने उम्रकैद की सजा भुगती, काले पानी की जेल में सड़े तथा प्रत्येक प्रकार के राजकीय अत्याचारों का शिकार हुए, परन्तु अपनी हिम्मत नहीं हारी। आओ, इन बलिदानों को सही अर्थों में सम्मान देते हुए, इस क्रांतिकारी इतिहास को लोगों के मनों का हिस्सा बनाएं ताकि हर प्रकार के अत्याचारों के विरुद्ध डट जाने की गतिशील भावना का लोगों के मन में संचार हो सके।

आस्तिकता के दुष्परिणाम

डा. रणजीत



मैं जब कभी सैंकड़ों, हज़ारों लोगों को धार्मिक स्थानों में, जो है, एकदम प्रत्यक्ष सामने है- यह प्रकृति, यह पृथ्वी, उसका पर्यावरण, यह मानव-समाज, ये अपने सहजन, प्रियजन-परिजन; इनके दुख-सुख, रोग शोक-इस सारे धड़कते हुए, जीवन्त संसार से आँखें मूँदकर, जो कहीं नहीं है, उस ईश्वर की पूजा-अर्चना-प्रार्थना में लगे देखता हूँ; शोर शराबे, धूम-धड़ाके भरे, धार्मिक जुलूसों के जुनून में झूमते-गाते पाता हूँ, तो मेरे मन में उनके प्रति तरस और करुणा की लहरें उठने लगती हैं। काश! धर्म की धन्धेबाजी करने वाले कुछ धुर्त व्यवसायियों के बहकावे में आए हुए इन भोलेभाले लोगों का यह सैलाब इस निरर्थक काम को छोड़कर अपने देश और समाज को, उसकी मूलभूत समस्याओं-अशिक्षा, कूपमण्डूकता, रोग-शोक, और सामाजिक-आर्थिक विषमताओं से मुक्त करने के उद्योग में लग सकता है; वैसी स्थिति में इस संसार को अपनी कल्पना का 'स्वर्ग' बनाने में हमें कितनी देर लगती?

मेरा ख्याल है कि आस्तिकता ने मानव समाज को जो बड़े-बड़े नुकसान पहुँचाये हैं, उनमें से एक, मानवीय श्रमदिवसों की यह बेहिसाब बर्बादी भी है। धर्मग्रन्थों के अध्ययन-मनन, अनुसंधान और विभिन्न मतों के बीच शास्त्रार्थ में लगे रहे और आज भी लगे हुए धर्मचार्यों के निरुत्पादक और निरर्थक श्रम को भी इस बर्बादी में जोड़ना चाहिए। शायद ही मानवजाति ने, युद्धों को छोड़कर और किसी काम में, अपने समय, श्रम और संसाधनों की ऐसी भयंकर बर्बादी की हो। आस्तिकता से मानवजाति को जो दूसरा बड़ा नुकसान हुआ है, वह यह कि उसने मनुष्य का आत्मविश्वास छीनकर उसे डरपोक और कायर बना दिया है। रास्ते में किसी लाल कपड़े में लिपटी हुई कोई चीज़ दिख जाये तो वह काँप उठता है-ज़रूर किसी ने कोई टोना किया है, आज मेरा कोई न कोई अनिष्ट होकर रहेगा। आस्तिकता ने उससे अपनी क्षमता पर, अपने कर्म से आत्मविश्वास छीन लिया है, वह अपने आप को दैवीय शक्तियों का गुलाम समझने लगा है। भय अतिरिक्त क्रूरता को जन्म देता है। डरा हुआ आदमी दूसरों के प्रति ज्यादा क्रूर हो जाता है। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाली स्त्रियों को सभी देशों में डायनें या चुड़ैलें घोषित कर बड़ी क्रूरता से मारा गया; स्वतन्त्र विचारकों, नये अप्रत्याशित तथ्य खोजने वाले वैज्ञानिकों और नास्तिकों को ज़हर पिलाने या जिन्दा जलाने के काम भी तत्कालीन भयभीय सत्ताधारी आस्तिकों की क्रूरता के ही कारनामे थे।

मनुष्य और अन्य पशुओं में मुख्य अन्तर यह माना जाता है कि मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है। पर ईश्वर पर आस्था ने हमेशा उसके विवेक को बाधित किया है। उसे भूतों-प्रेतों से डरना सिखाया है, शुभ-अशुभ दिन, घड़ी, संख्या और शकुन-अपशकुन के तर्कहीन अन्धविश्वासों में डाला है। उसे इन्सान से काठ का उल्लू बना दिया है। ईश्वर के विश्वास ने उसे अप्राकृतिक शक्तियों और घटनाओं में विश्वास करना सिखाया है, अज्ञानियों और बुद्धिहीनों की तरह व्यवहार करना सिखाया है।

आस्तिकता बच्चों का खेल है। यह एक परिवारप्रदत्त संस्कार है, जिसे लगभग सभी बच्चे सहज ही सीख लेते हैं। ईश्वर के अस्तित्व को मानने के लिए किसी विद्या-बुद्धि, किसी चिन्तन-मनन, किसी काम में कुशलता की आवश्यकता नहीं है। मन्दिरों-मस्जिदों में प्रार्थना-नमाज अदा करते अपने-अपने मां-बाप को देखते हुए बच्चे सहज ही आस्तिक हो जाते हैं। पर नास्तिक बनने के लिए अच्छी-खासी तर्क-बुद्धि, अच्छे-खासे जागृत विवेक और अच्छे-खासे साहस की जरूरत होती है। परम्परा और संस्कार के बोझ को हटाकर सत्य को सत्य कहने में ग़ज़ब का साहस चाहिए। यह साहस गम्भीर अध्ययन-मनन और आत्म-चिन्तन से ही आ सकता है। ईश्वर में विश्वास का एक नुक्सान यह भी है मनुष्य ईश्वर के बहाने अपने उत्तरदायित्व से मुक्ति पा लेता है। गलत काम करेगा खुद और उसके अनिच्छत परिणाम सामने आने पर कहेगा-क्या कर सकते हैं, जैसी प्रभु की इच्छा! एक ही वाक्य में वह अपने कार्य-व्यवहार या निर्णय की जिम्मेदारी से भी मुक्त हो गया और ईश्वर के आदेश को नम्रतापूर्वक स्वीकार करने वाले उसके भक्त होने की भूमिका भी उसने अदा कर ली। पर वह यह नहीं सोचता कि इस प्रक्रिया में उसकी मनुष्यता कितनी क्षरित हुई? एक मनुष्य के रूप में उसका कितना अवमूल्यन हुआ, एक जिम्मेदार इन्सान के रूप में वह कितना दयनीय, कितना नाचीज़ साबित हुआ। एक आदमकद इन्सान की जगह

एक बौना अवमानव!

ईश्वर की अवधारणा के साथ ही जुड़ी हुई हैं, 'स्वर्ग-नरक' या 'परलोक' की धारणा। और देहान्त के बाद 'आत्मा' के इन लोकों में जाने की कल्पना। हिन्दुओं में 'परलोक' की यह कल्पना। वैदिक काल के वाङ्मय में नहीं मिलती। इसका कारण सम्भवत: यह है कि वैदिक सभ्यता विजेता आर्यों की सभ्यता थी। जमीनों की इफरात थी, नये-नये क्षेत्र जीते जा रहे थे, इहलोक धन-धान्य से परिपूर्ण था, इस लोक में दु:ख-दर्दों की क्षतिपूर्ति के लिए 'परलोक' के लम्बे-चौड़े दर्शनशास्त्र की आवश्यकता नहीं थी। वैदिक ऋषियों ने जिन देवताओं की कल्पना की-इन्द्र, वरुण, यम आदि-वे भी उनके अपने पूर्वज ही थे, या प्रकृति की ऐसी शक्तियाँ जैसे अग्नि, वायु, वर्षा आदि, जिनका रहस्य समझ में नहीं आता था। पर आगे चलकर इस सरल धर्म में भी ओझाओं और पुरोहितों तथा अनेक जटिल अनुष्ठानों के कारण संश्लिष्टता और जटिलता आयी। और धर्म शासक-वर्ग के स्वार्थों का साधन बन गया। उपनिषदों में हमें अनेक स्थलों पर धर्म के शासक-समर्थक रूप के प्रति विरोध के स्वर सुनाई पड़ते हैं। विरोध की इसी प्रक्रिया में से चार्वाक, बौद्ध जैसे नास्तिक दर्शनों का विकास हुआ।

'ईश्वर' और 'परलोक' की अवधारणाओं ने कैसे अब तक के मानवजाति के एक क्रूरतम यथार्थ-वर्गविभाजन या मनुष्य और मनुष्य के बीच की भयंकर समाजार्थिक विषमता-को सहज बनाकर शासक-शोषक वर्ग के हितों की रक्षा की, उनके विरुद्ध शासित-शोषित वर्गों के विद्रोह की सम्भावनाओं को टाला, इसकी एक सहज स्वीकृति आधुनिक युग के एक नामी तानाशाह नेपोलियन बोनापार्ट के मनमथ नाथ गुप्त द्वारा उद्धत इस कथन में दिखाई देती है- ''बिना धर्म के भला किसी राष्ट्र में सुव्यवस्था कैसे कायम रह सकती है? समाज व्यक्तियों के भाग्यों विषमता के बिनां चल नहीं सकता और धर्म के बिना ये विषमताएँ टिक नहीं सकतीं। जिस समय एक व्यक्ति भूख से मरा जा रहा हो और दूसरा जरूरत से ज्यादा खा-खाकर बीमार हो रहा हो, उस समय पहला व्यक्ति तब तक अपनी स्थिति को सहने के लिए तैयार नहीं होगा, जब तक कि कोई धर्माधिकारी व्यक्ति उसे यह न कहे कि यही प्रभु की इच्छा है। संसार में अमीर और गरीब ईश्वर के ही बनाये हुए हैं। पर 'परलोक' में यह बंटवारा पूरी तरह बदल जाएगा।''

इस सदन्र्भ में गरीबों को झूठा दिलासा देने वाला यह प्रसिद्ध वाक्य बरबस याद आ जाता है कि सूई के छेद में से ऊँट निकल सकता है, पर धनी व्यक्ति स्वर्ग में नहीं जा सकता। यानी मेरी प्यारी भेड़ों, शान्ति से इस लोक में भेड़ियों के अत्याचार सहो, क्योंकि परलोक में तो स्वर्ग तुम्हारे ही लिए सुरक्षित है।

ईश्वर और उसके विभिन्न अवतारों और देवी-देवताओं को प्रसन्न करने और उनकी कृपा प्राप्त करने के नाम पर धर्म के सारे कर्मकाण्ड और उन्हें सम्पन्न करवाने वाले पंडे-पुजारी, ओझा और सयाने अर्थात् एक पूरा पुरोहित वर्ग विकसित हुआ, जिसकी जीविका ही इन कर्मकांडों, टोने-टोटकों से मिलने वाली दक्षिणा थी। धर्म का सारा तामझाम, पूरा व्यापार ईश्वर आदि की अवधारणा पर ही आधारित है। इस तरह आस्तिकता ने ही भारतीय सन्दर्भ में केवल पुरोहितों यां ब्राह्मणों के एक परजीवी वर्ग को जन्म दिया और उसके माध्यम से वर्ण-व्यवस्था स्थापित करके पूरे समाज को वर्ण विभाजित कर शूद्रों के साथ अमानवीय अत्याचार किये। यह वर्ण व्यवस्था ही कालक्रम मे जाति-व्यवस्था में परिवर्तित हुई; पूरा हिन्दू समाज सैंकड़ों श्रेणीबद्ध ऊँची-नीची जातियों में बंट गया। इस जातिवादी कोढ़ से हमारा देश आजादी के 75 साल बाद भी मुक्त नहीं हो सका है।

अभिप्राय यह है कि ईश्वर मनुष्य की एक बचकानी कपोल-कल्पना मात्र नहीं है, वह उसका आदिम, अबोध, अन्धविश्वास मात्र नहीं है, यह मानव समाज के लिए एक हानिकारिक अवधारणा है, जो न केवल मनुष्य और मनुष्य के बीच की विषमताओं को स्वीकार्य बनाती है, मनुष्य द्वारा अन्य मनुष्यों को गुलाम बनाये जाने की अमानुषिकता को भी उचित ठहराने में मदद करती है। अपने समय के क्रूर से क्रूर और स्वेच्छाचारी से स्वेच्छाचारी शासकों ने अपने आपको ईश्वर के अवतार घोषित करवाकर ही अपनी भोली प्रजा को अपने अत्याचार निर्विरोध सहने की प्रेरणा दी। ईश्वर मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को जायज ठहराने वाली एजेन्सी है, विषमता का प्रहरी है; मानवीय स्वतन्त्रता, समानता और भाईचारे का दुश्मन है। वह मनुष्य के अज्ञान और अन्धविश्वास की सन्तान तो है ही, एक बार अवधारणात्मक पुष्टि पा लेने के बाद वह मनुष्यों के अज्ञान और अन्धविश्वासों का रखवाला भी बन गया है। उसकी धारणा से छुटकारा पाये बिना मानव समाज स्वस्थ, सुखी और मानवीय हो नहीं सकता।

-91087-92360

जीन के योगदान संबंधी भ्रम



योद्धा सिंह

जीव विज्ञान के क्षेत्र में 19वीं-20वीं शताब्दी का अपना एक विशेष महत्व है क्योंकि 1848 में डार्विन की पुस्तक 'द ओरिजिन ऑफ लाइफ' प्रकाशित हुई थी, जिसने दैवीय शक्तियों द्वारा जीवन के निर्माण के सदियों पुराने सिद्धांत को उलट दिया था। इसके बाद अलेक्जेंडर ओपरान और जे.बी.एस. हाल्डेन इत्यादि रसायन विज्ञान में भी नव-डार्विनवाद के विकास की प्रक्रिया को साबित करते हैं। जब आनुवंशिकी विषय उभरता है, तो 19वीं सदी के भूले-बिसरे महान वैज्ञानिक जॉर्ज मेंडल के शोध कार्य को फिर से परखा जाता है और सारी उम्र मटरों पर प्रयोग करने वाले इस वैज्ञानिक को आनुवंशिकी के क्षेत्र में पितामाह का दर्जा दिया जाता है। मैंडल ने मटरों की कई पीढियों पर काम करते हुए आनुवंशिकता के सिद्धांत प्रस्तुत किए और यह खोज की कि माता-पिता से बच्चों तक खास गुण कैसे (ट्रांजिट) पारित हो जाते हैं, और उनके समकालीन प्रकृतिवादी चार्ल्स डार्विन ने प्राकृतिक चयन का सिद्धांत दिया, जिसने पृथ्वी के प्रागैतिहास के करोड़ों वर्षों की व्याख्या को सरल बनाया। नव-डार्विनवादियों ने मेंडल के आनुवंशिकता (वंश-परंपरा) के सिद्धांतों को डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धांतों के साथ जोड़ा, और अंत में उन्होंने यह हल किया कि जीव विकास में 'आनुवंशिकता और पर्यावरण' एक साथ कैसे काम करते हैं।

1944 में, माइक्रोबायोलॉजिस्ट ओसवाल्ड आइवरी डी. एन. ए. की खोज करता है और इस तथ्य को चिह्नित करता है कि वह डी.एन.ए. ही है जो आनुवंशिकी (एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी तक जाने वाले गुणों) द्वारा माता-पिता से बच्चों तक जाता है। तो, कुल मिलाकर, यह डीएनए ही था जिसका मेंडल मटर में निरीक्षण करता रहा , डार्विन पर्यावरण द्वारा चुने गए जीवों में आते बदलाव का अध्ययन करता रहा। अंत में, वाटसन और क्रिक ने इस डी.एन.ए. के माडल को तैयार कर दिया जिस कारण डार्विन-मैंडल की खोजें अक्षरश: सही साबित हुईं ।

डी.एन.ए. प्रत्येक कोशिका के केंद्रक में होता है, - जो कि आपस में लिपटे हुए दो धागों की तरह दिखता है। अधिकतर डी.एन.ए. के भाग का कोई कार्य नहीं होता है, लेकिन कुछ खास भागों में जानकारी होती है जिसका मुख्य कार्य कोशिका की संरचना को बनाए रखना और कोशिका के कामकाज को नियंत्रित करना होता है। ये विशिष्ट धागे ही निर्धारित करते हैं कि एक आम के बीज से एक आम और एक सेब से एक सेब ही विकसित होगा, अर्थात प्रजातियों के लिए डी.एन.ए .वह पहचान पत्र है जिसके आधार पर डी.एन.ए. परीक्षण द्वारा किसी जीव के बारे में बहुत सी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। डीएनए का यह विशेष सूत्र ही वह कारक है जो चर्चा का विषय है, जिसका अर्थ है 'जीन'। एकल कोशिकीय जीव से लेकर मानव तक प्रत्येक जीव के अपने विशिष्ट जीन होते हैं, कुछ जीन सभी जीवों में समान होते हैं।

अब विषय पर वापस आते हैं, सन् 1900 में आनुवंशिकी (जीन संबंधी अध्ययन) का नया विषय अस्तित्व में आया, जिसने अतीत से चले आ रहे जटिल रहस्यों को खोल दिया। लेकिन किसी वैज्ञानिक के किसी भी शोध का आधार/प्रभाव प्रयोगशाला की चारदीवारी तक सीमित नहीं होता, बल्कि वह प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से समाज के हर वर्ग को प्रभावित करता है। सामाजिक संरचना भी निष्कर्षों से लाभ उठाने के लिए तैयार है। यदि सामाजिक संरचना मानवता-केंद्रित होगी, तो खोजों का उपयोग मानवता की भलाई के लिए किया जाएगा। जिस अवधि में आनुवंशिकी का जन्म हुआ वह मौजूदा पूंजीवादी ढांचे के लिए आर्थिक मंदी का दौर था। इस मंदी के दलदल में यह व्यवस्था गरीबी और भूखमरी को खत्म करने में नाकाम रही। इसलिए इससे कुछ ऐसे सिद्धांत बनाए गए जिन्हें आनुवंशिकी की आड़ में लोगों को परोसा गया और यह साबित करने की कोशिश की गई कि गरीबी और अमीरी के भी जीन हैं , गरीबों के जीन अच्छे नहीं हैं इसलिए इनकी नसबंदी कर देनी चाहिए ताकि ये जीन अगली पीढ़ियों तक न जा सकें । परिणामस्वरूप मुख्य रूप से दो मत प्रचलित हुए जिन्होंने ज्यादा प्रभावित किया। पहला है -घटाववाद (रिडकसनिज्म) जिसके अनुसार किसी भी वस्तु को जानने के लिए उसे अति

विभाजित करके अध्ययन करना जैसे यदि मनुष्य का व्यवहार जानना है तो विशेष प्रोटीन ढूंढना । फिर उस प्रोटीन में विद्यमान हाइड्रोजन, कार्बन आदि की जांच करें, फिर इलेक्ट्रान, प्रोटोन आदि का जितनी गहराई तक अध्ययन किया जाएगा उतना बेहतरीन जाना जाएगा । यह भटकाव इस तरह है जैसे मान लो घर की दीवार कमजोर होने कारण, स्तंभ सही न होने कारण या किसी और कारण से घर गिर जाता है और कारण जानने के लिए आपको कहा जाए कि घर की ईंटों की पड़ताल करो, ईंटों में प्रयोग की गई मिट्टी के कणों की जांच करो, मिट्टी में मौजूद परमाणुओं, अणुओं की जांच करो क्योंकि जितनी गहरी जांच होगी उतना ही बेहतर जान सकोगे।

दूसरा सिद्धांत 'जैविक निर्धारणवाद' था जो घटाववाद के करीब है जिसके अनुसार सभी मानवीय क्रियाएं मानव इच्छा से स्वतंत्र हैं, मनुष्यों या प्रत्येक जीवित प्राणी का व्यवहार जीन द्वारा निर्धारित होता है। जैसे मैं कहूं कि जो अब मैं लिख रहा हूं , यह मेरी इच्छा नहीं है यह काम मेरे जीन करवा रहे हैं, आप जो इस लेख को पढ़ रहे हैं, यह आपकी कोशिकाओं के अंदर के जीन की इच्छा है, आप की नहीं। अधिक से अधिक यह इस बिंदु की ओर ले जाता है कि समाज जिस रूप में संचालित होता है वह सभी मानव जीनों का योग होता है।

ये दोनों मत शासक वर्ग को लाभान्वित करते रहे हैं क्योंकि जीन ही सब कुछ निर्धारित करते हैं, अमीर परिवार अपने जीन के कारण अमीर होते हैं, गरीब लोग अपने गरीबी जीन के कारण गरीब होते हैं। इसका मतलब है कि सामाजिक असमानता स्वाभाविक है, इसके खिलाफ होने का मतलब है प्रकृति की व्यवस्था के खिलाफ बोलना । यह अवैज्ञानिक विचार रिचर्ड डॉकिन्स द्वारा प्रस्तुत किया गया था। इस प्रकार इस आनुवंशिक निर्धारणवाद ने हर सामाजिक समस्या को जीन तक कम करने का काम किया। फरवरी 1995 को लंदन में एक सैमीनार आयोजित किया गया जिसका विषय 'आपराधिक और सामाजिक प्रबंध - विरोधी व्यवहार का जेनेक्सि' था जिसमें 13 में से 10 वक्ता अमेरिकी थे। 1992 में अमेरिका जेनेटिक्स में इसी तरह का एक और सम्मेलन सार्वजनिक विरोध के कारण रद्द करना पड़ा। इसके अध्यक्ष माइकल रटर (इंस्टीट्यूट ऑफ साइकियाट्री, लंदन) ने कहा कि जीन जैसी कोई चीज नहीं है जो अपराध का कारण बनती है। लेकिन एक अन्य सदस्य डॉ. ग्रेगरी कैरे (कोलोराडो विश्वविद्यालय) ने कहा कि 40-50% आपराधिक मामलों के लिए जीन जिम्मेदार होते हैं। कैरे ने अपने 'बुद्धि के थैले' से सुझाव भी दिए कि जैसे - लोगों में बढ़ते क्रोध को दवा के माध्यम से नियंत्रित किया जाना चाहिए, वैसे ही गर्भावस्था के दौरान बच्चे के जीन का परीक्षण किया जाना चाहिए और यदि ये जीन राष्ट्र-विरोधी हैं या यदि वे असामाजिक हैं तो गर्भपात करवाना चाहिए।

पूंजीपति वर्ग ने ऐसी मान्यताओं का बहुत फायदा उठाया। पूंजीपति सभी एक-दूसरे से होड़ करते हैं, एक-दूसरे को मात देने के लिए ठगी, चोरी, झूठ, धोखाधड़ी आदि को जायज ठहराते हैं। यही पूँजीपति वर्ग जो खुली प्रतिस्पर्धा का आह्वान करता है, अस्तित्व के लिए संघर्ष, योग्यतम (डार्विन) के अस्तित्व के सिद्धांत को तोड़-मरोड़ कर अपने पक्ष में इसका उपयोग करता है। लेकिन आम मेहनतकश लोगों के संघर्ष इन्हें अपराध लगते हैं, समाज विरोधी व्यवहार लगते हैं। फिर वे इन कारणों के पीछे के जीन को खोजने के लिए बैठ जाते हैं।

जीव विकास में जीन और वातावरण की भूमिका

जीवों के विकास में, न केवल जीन, बल्कि कोशिकाओं और पर्यावरण की संपूर्ण कार्यप्रणाली एक साथ विशिष्ट अनुपात में योगदान करती है। एक जीन का मुख्य कार्य कोशिकाओं की संरचना और कार्य को नियंत्रित करना है। पर्यावरण एक ऐसा कारक है जो लगातार परिवर्तनशील है। तापमान में परिवर्तन, ऋतुओं में परिवर्तन, आर्द्रता या शुष्कता आदि महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारक हैं जिनके अनुसार जीव जीवित रहने के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं । बदल रही परिस्थितियों अनुसार बदलने वाले जीव जीवित रहते हैं, जो नहीं बदलते प्राकृतिक परिस्थितियां उनका सफाया कर देती हैं।

'सब कुछ जीन की इच्छानुसार होता है' यह कहना बिल्कुल गलत है ।

'जीन इच्छा जगाते हैं और उन्हें पूरा भी करवाते हैं।' (मेरा लिखा जाना और आपका पढ़ रहे होना) यह कथन कितना दमदार है ? क्या पर्यावरण के प्रभाव को स्वीकार करने की क्षमता भी जीन पर निर्भर करती है ? इस पंक्ति को पढ़कर ऐसा लगता है कि जीवित चीजें कोशिकाएं नहीं हैं, बल्कि जीन हैं। वास्तव में होता यह है कि जीन में होने वाले परिवर्तन किसी की इच्छा के अनुसार नहीं होते हैं, बल्कि दो पदार्थों की परस्पर क्रिया के कारण होते हैं , पहला

पदार्थ डी.एन.ए. होता है जिससे जीन बनता है, दूसरा पर्यावरणीय पदार्थ जैसे कि कुछ रासायनिक कारक (जैसे तंबाकू जो कोशिका के कार्य-तंत्र को बदल देता है जिससे जीन के कार्य में परिवर्तन होता है) और भौतिक कारक (जैसे एक्स-रे किरणें, अवरक्त किरणें जो डीएनए को तोड़ने का काम करती हैं) ये भौतिक / रासायनिक कारक जीन की इच्छा नहीं पूछते बल्कि भौतिक स्तर पर एक दूसरे के साथ क्रिया करते हैं। बदले में कोशिका की कार्यप्रणाली जीन की रक्षा करने का कार्य अवश्य करती है (विवरण के लिए पढ़ें - डीएनए का मरम्मत तंत्र)।

'जीन ही सबकुछ हैं' ये विचार भी रिचर्ड डॉकिन्स के हैं। 1976 में, रिचर्ड ने 'सेल्फिश जीन' पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने यह भी दावा किया कि 'सब कुछ जीन ही हैं, जीव केवल जीन के लिए एक उपकरण हैं ताकि जीन पीढ़ी दर पीढ़ी पारित होते रहें।' सैमुअल बटलर ने इसमें जोड़ा, जिसके अनुसार 'मुर्गी एक अंडे से इसलिए बनती है ताकि वह अगला अंडा दे सके।' अर्थात मुर्गी होने का कोई मतलब नहीं है, इसका मतलब सिर्फ जीन है। उद्देश्यवादी रिचर्ड का मानना था कि डीएनए केवल डी.एन.ए. बनाने के लिए, यह जीव को एक मशीन के रूप में उपयोग करता है। रिचर्ड ने डार्विन के सिद्धांत को भी नहीं बख्शा। उसके अनुसार जीव नहीं बल्कि जीन संघर्ष करते हैं, जीन संघर्ष करने के लिए जीव का उपयोग करते हैं ।

कुल मिलाकर शेर व हिरण में नहीं बल्कि उनके जीनों में टकराव हो रहा है । इस सिद्धांत को मानव समाज पर भी लागू करते हुए, यह निष्कर्ष निकाला गया कि मानवीय क्रोध, अपराध, गरीबी, अमीरी आदि हर वस्तु के लिए भी जीन ही जिम्मेदार हैं। यदि जीन ही सब कुछ हैं, तो विकास नहीं हो सकता, क्योंकि विकास की प्रक्रिया को बढ़ावा देने वाले अनिवार्य कारकों में पर्यावरण मुख्य कारक है। इसलिए, जीन तक सीमित दृष्टिकोण विकास विरोधी भी है। यह बिल्कुल सच है कि जीन के बिना जीव का अस्तित्व नहीं हो सकता है, लेकिन साथ ही यह समझना भी आवश्यक है कि सही वातावरण के बिना जीन का अस्तित्व भी नहीं रह सकता। जीन पर्यावरण के साथ समन्वय करते हैं और जीवों के निरंतर विकास में योगदान करते हैं। यदि आनुवंशिकी 100 प्रतिशत हो तो फिर विकास जैसी अवधारणा की कोई गुंजाइश ही नहीं रह जाती है।

क्या जीन मानव व्यक्तित्व का निर्माण भी करते हैं ?

यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। व्यक्तियों के व्यक्तित्व विकास, योग्यताओं, कौशलों आदि के लिए जीन को अक्सर जिम्मेदार घोषित किया जाता है। जीन केवल हमारी शारीरिक विशेषताओं (जैसे रंग, आकार, सुंदरता, ऊंचाई आदि) को आनुवंशिकी के माध्यम से अगली पीढ़ी तक हस्तांतरित करते हैं, लेकिन मानवीय व्यक्तित्व (मानसिक जीवन, कौशल, कलात्मक क्षमता, बौद्धिक क्षमता आदि) में जीन की कोई भूमिका नहीं होती है । तो फिर व्यक्तित्व के ये गुण कहाँ से आते हैं ?

विकास की प्रक्रिया को जीन और पर्यावरण के बीच द्वंद्वात्मक संबंध निर्धारित करता है। मनुष्य को छोड़कर अन्य जीवों में-विशुद्ध जीन और पर्यावरण मिलकर सही अनुपात में प्रभाव डालते हैं, प्रत्येक जीव जीन-पर्यावरण संबंध का एक विशिष्ट उत्पादन होता है। इसका मतलब है कि जीवों की नई पीढ़ियों में मौजूद लक्षणों के लिए जीन और पर्यावरण दोनों जिम्मेदार हैं। लेकिन जीन और पर्यावरण के अलावा भी, मनुष्य के पास कुछ और महत्वपूर्ण है जो मानव विकास में महत्वपूर्ण योगदान देता है और वह है मनुष्य का सामाजिक जीवन। जब मनुष्य के पूर्वजों ने हाथों और औजारों का प्रयोग करना सीख लिया और पूर्व कल्पित उद्देश्यों अनुसार सरगर्मी करनी शुरू कर दी, अर्थात् जब मनुष्य नें श्रम करना शुरू कर दिया तो इसी के साथ मानव प्राकृतिक जीवन केअनेकों बंधनों से आजाद होता चला गया व एक सामाजिक जीवन का सृजन हुआ। मनुष्य के बिना किसी भी अन्य जीव के पास यह सामाजिक जीवन नहीं है क्योंकि अन्य कोई भी जीव श्रम नहीं करता ।

इस प्रकार मानव विकास जैविक और सामाजिक जीवन के तत्वों के बीच अंतर्संबंध का परिणाम है जिसमें चेतना मनुष्य के सचेतन कार्यों के लिए जिम्मेदार है। मानव शरीर विशेष रूप से मस्तिष्क (जीन) को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित किया जाता है, लेकिन प्रत्येक पीढ़ी को भाषा, कला, कौशल आदि जैसी क्षमताएं सीखनी पड़ती हैं। (ऐंगल्स) अतः इन योग्यताओं या व्यक्तित्व लक्षणों को केवल सामाजिक जीवन से ही सीखा जा सकता है क्योंकि ये स्वयं सामाजिक जीवन की उपज हैं। आइए भाषा का उदाहरण लेते हैं। यदि जीन सब कुछ करते हैं, तो क्या भाषा सीखने वाले जीन वाला बच्चा केवल माता-पिता की भाषाएं सीख पाएगा और कुछ नहीं। इसके विपरीत,

यदि कोई बच्चा जन्म के बाद जंगल में छोड़ दिया जाता है, तो वह कोई भाषा नहीं सीख पाएगा, उसे बोलना नहीं आएगा, क्योंकि यह जीन नहीं हैं जो सामाजिक जीवन को निर्धारित करते हैं। भाषा सीखने के लिए दिमाग के एक हिस्से का विकसित होना जरूरी है। ये जीन विकास का कार्य करते हैं। अगला कार्य सामाजिक जीवन का है। इसी तरह, सामाजिक जीवन सभी प्रकार की बौद्धिक क्षमता, कलात्मक क्षमता, मानवीय संवेदनाओं आदि के लिए जिम्मेदार है, न कि जीन, क्योंकि ये सभी मनुष्य के हजारों वर्षों के सामाजिक जीवन के विकास के उत्पाद हैं।

इस वजह से व्यक्ति की पारिवारिक पृष्ठभूमि, पालन-पोषण, आसपास का सामाजिक वातावरण व्यक्तित्व के लिए जिम्मेदार होता है न कि जीन। वास्तव में मनुष्य अपने जीवन यापन के साधन उत्पन्न करने के लिए उत्पादन के जिन सामाजिक संबंधों में रहता है, वे ही सामाजिक जीवन का आधार होते हैं। इस वजह से, शोषण पर आधारित वर्तमान साम्राज्यवादी समाज में, संपत्ति के साधनों पर कब्जा करने वाला और श्रम के शोषण के माध्यम से रहने वाला वर्ग इस स्थिति को बनाए रखने की कोशिश करता है और मजदूर, कामकाजी आबादी, जो इस संरचना में उत्पीड़त, इन परिस्थितियों को बदलने की कोशिश कर रहे हैं। इस लिए उनके बीच अमीरी,गरीबी और उनमें टकराव के कारण सामाजिक जीवन में हैं, न कि जीन में, इसलिए जीन को दोष देना वास्तव में मेहनतकश लोगों के संघर्ष को नष्ट करना और इन शोषण-आधारित सामाजिक संबंधों को बनाए रखना है।

नस्लीय शुद्धता और अंध राष्ट्रवाद

पूरी पृथ्वी के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में रहने के कारण और विशिष्ट क्षेत्रों के पारिस्थितिक कारणों के कारण मानव जाति रंग-रूप के मामले में काफी विविध रही है, जैसे अफ्रीका महाद्वीप के निवासी काले हैं, चीनी लोग नैन-नक्श के आधार पर काफी अलग हैं। गुलामी, सामंतवाद और अब पूंजीवाद के युग से और अब पूंजीवाद में भी, शासक वर्गों ने इन विभिन्नताओं के आधार पर लड़ाकर लोगों पर शासन करने के लिए इन विभिन्नताओं का लाभ उठाया है। नस्ल के आधार पर सबसे अधिक सामूहिक हत्याएं जर्मनी में एडोल्फ हिटलर द्वारा की गईं, जिन्होंने जातीय शुद्धता की आड़ में अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया। उनके उत्तराधिकारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, भाजपा भी आज भारत में इस इतिहास को दोहरा रही है। जीन पर आधारित उपरोक्त भ्रम इस नस्लीय शुद्धता का आधार बनते रहे हैं। आज किसी भी वैज्ञानिक व्यक्ति द्वारा की गई गलत टिप्पणी उस समाज को गुमराह करने जैसी है जहां विज्ञान नामक तितली को कभी भी अपने पंख ठीक से खोलने की अनुमति नहीं दी गई है। इस नस्लीय अन्याय को अंजाम देने के लिए अतीत के लोगों के काले कर्म आज भी मानवता के लिए चुभने वाले हैं। यदि जीन आधारित कुछ प्रकटीकरण करना है तो धर्म, जाति, पंथ में बंटे लोगों को एकजुट करने के लिए करना चाहिए, क्योंकि इनका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है, अलग-अलग धर्म, जातियां मनुष्य द्वारा बनाई गई हैं, हमारा वैज्ञानिक नाम होमो सेपियंस है और हमारे जीन सांझे हैं।

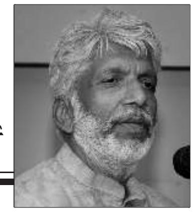
पुस्तक 'अफ्लातून से लेनिन तक' में उल्लेख है कि पश्चिम जर्मनी में कुछ बच्चों को इस विषय पर एक निबंध लिखने के लिए कहा गया था कि 'अगर मैं मनमर्जी कर सकता तो मैं क्या करता?' एक ने लिखा 'मैं दुनिया भर के स्कूलों को उड़ा दूंगा।' एक अन्य ने लिखा, 'मैं हर जगह बम फेंकूंगा- मैं घरों में आग लगा दूंगा और समुद्र में कूद जाऊंगा।' इस विषय पर, समाजवादी सोवियत स्कूलों के बच्चों ने ये जवाब दिए : 'पूंजीपतियों व कारखानों के मालिकों द्वारा गुलाम बनाए गए नीग्रो को मुक्त करूंगा।', एक ने लिखा, और दूसरे ने यह कहते हुए इस प्रश्न का उत्तर दिया, 'पहली चीज जो मैं करूंगा वह है परमाणु और हाइड्रोजन बमों पर प्रतिबंध।'

बच्चों के उत्तरों में इतना अंतर क्यों है? कारण यह है कि बच्चे विभिन्न सामाजिक व्यवस्था में रह रहे थे। यह व्यक्तित्व निर्माण पर सामाजिक जीवन का प्रभाव है। यही कारण है कि जीन और पर्यावरण के बीच द्वंद्वात्मक संबंध को पहचानना आवश्यक है और यह पूरी तरह से गलत होगा यदि हम दोनों को उनके आपसी संबंध से अलग करके समझने की कोशिश करेंगे। इसी तरह, मानव जीवन के लिए यह समझना चाहिए कि जीन और पर्यावरण की भूमिका केवल व्यक्ति की शारीरिक विशेषताओं तक होती है और सामाजिक जीवन मानव व्यक्तित्व के लिए जिम्मेदार होता है, जीन नहीं।

9653359244

अनुवाद : कृष्ण कायत - 9896105643, मंडी डबवाली।

रिंग थियेटर



सुधीर विद्यार्थी

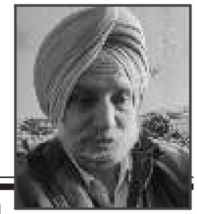
लखनऊ का जीपीओ किसी जमाने में मशहूर 'रिंग थियेटर' था। आजादी से पहले योरोपियन क्लब में ब्रिटिश अधिकारियों के रंगारंग कार्यक्रम होते थे। उनके लिए यह बहुत सुरक्षित जगह थी, जहाँ भारतीय का जाना प्रतिबंधित था। नौ अगस्त, 1925 को उत्तर भारत के क्रांतिकारियों पर काकोरी के निकट सरकारी खजाने की लूट के बाद मुकद्मा चलाने के लिए ब्रिटिशों को अदालत की जगह 'रिंग थियेटर' की यह जगह ज्यादा मुफीद लगी और सरकार ने इसे महंगे किराए पर लिया। काकोरी केस की सम्पूर्ण कार्यवाही का साक्षी यह परिसर हमें आज भी उन दृश्यों की याद दिलाता है, जब 18 महीने तक चली अदालती कार्यवाही के बाद इस मामले का पटाक्षेप हुआ था।



यह पुराना 'रिंग थियेयर' अब प्रधान डाकघर हैं, जहाँ उस क्रांतिकारी चेतना का कोई भी निशान शेष नहीं है, जिसे 1921 के असहयोग आंदोलन के बाद देश के जांबाजों की टोली ने अपने बलिदान से इतिहास के सीने पर टांक दिया था। इस इमारत से सटे सामने के पार्क में 1977 में काकोरी के शहीदों की अर्धशती पर एक स्तंभ बना दिया गया, जिस पर चंद पंक्तियां उस ऐतिहासिक घटनाक्रम की दर्ज हैं। मेरी आंखों में काकोरी अभियुक्तों की लारी बार-बार इस परिसर में आकर रुकती है, जिसमें से वे अपने मजबूत कदमों से उतरते हुए बुलंद आवाज में नारे लगाकर, अदालत के भीतर प्रवेश करते हैं और वहां भी उनका जोश थमता नहीं। 'रिंग थियेटर' के भीतर एक ओर ऊँची फीस पाने वाले सरकारी वकील पंडित जगत नारायण मुल्ला खड़े हैं, तो दूसरी तरफ क्रांतिकारियों की ओर से पैरवी करने वाले बैरिस्टर बी. के. चौधरी, मोहनलाल सक्सेना, कृपाशंकर हजेला और चंद्रभान गुप्त जैसे युवा वकीलों की टोली। आशफाक उल्ला खां ने 500 रुपये रोज पाने वाले सरकार के वकील जगत नारायण पर उसी समय एक तंज भरा शेर पढ़ा, *चलो-चलो यारो, रिंग थिएटर दिखाएं तुमको वहां पे लिबरल, जो चंद टुकड़ों पे सीमोजर (सोने-चांदी के टुकड़े) का नया तमाशा दिखआ रहे हैं।* यह शेयर उनकी लंबी गज़ल का हिस्सा है, जो मजिस्ट्रेट ऐनुद्दीन की अदालत में उन्होंने सुनाई थी। उनका बहुत साहसिक कारनामा था यह। हिन्दी और उर्दू कविता की आलोचना ने अशफाक के इस कृतित्व की ओर कभी नहीं देखा।

रामप्रसाद विस्मिल के पीछे जब सब *बंदेमातरम* गाते चलते थे, धन्य है वे आंखें, जिन्होंने जी-भरके उनकी मस्तानी अदा को निरखा। उनके मोटर से उतरते ही *भारत माता की जय, भारतीय प्रजातंत्र की जय* आदि के उद्घोष से वायुमंडल धन हो जाता था। उनको देखने और मधुर गीत सुनने के लिए हजारों की भीड़ इकट्ठी होती थी। अधिकारियों के ह्रदय इस नाद को सुनकर दहल उठते थे। यहां कोई प्रैस रिपोर्टर ठीक-ठाक नहीं दिख पड़ता था। यदि कभी कोई अच्छा रिपोर्टर आ भी गया, तो पुलिस के मारे विचारे की आफत थी। हां, *इंडियन डेली टेलीग्राफ* ने कुछ मनोयोग के साथ इस ओर काम किया। शाम को जब इन लोगों की मोटर-लारी निकलती, तो सड़क के दोनों ओर जनता काफी तादाद में गाना सुनने को खड़ी रहती थी। उनके गानों का वहां इतना आदर हुआ कि एक पैसे से लेकर दो-दो आने में उनके एक-एक गाने की प्रति विकती दीख पड़ती थी। और फिर छह अप्रैल, 1927 को वह लम्हा आ गया, जब मुकदमे का फैसला होने वाला था। एक दिन पहले क्रांतिकारियों ने लखनऊ जेल की 11 नंबर बैरक में सामूहिक भोज के साथ अपनी सजाओं पर एक नाटक भी खेला था। कैसा अनोखा मंजर जब मृत्यु और सजाएं कुछ कदम की दूरी पर थीं, लेकिन विप्लवी उसे धता बताकर हंसी-ठिठोली का खेल खेलने में संलिप्त थे। अगले रोज सब क्रांतिकारी बहुत सवेरे जग गए। सबने कसरत की और स्नान किया। फिर विचार आया कि आज सब **... शेष पृष्ठ 10 पर**

तांत्रिक क्रिया की दहशत के चलते



– बलवंत सिंह लेक्चरार

संजीव की अपने गांव में बिजली उपकरणों के रिपेयर की दुकान थी। उसे बिजली की मोटरें बांधने, पंखे रिपेयर करने तथा बिजली के अन्य उपकरणों की रिपेयर करने में महारत हासिल थी। इसी कारण गांव में होने के बावजूद भी उसकी दुकान का काम बहुत अच्छे तरीके से चलता चला आ रहा था।

संजीव का एक चाचा डाकखाने में एक क्लर्क के तौर पर नौकरी करता था। दोनों परिवारों का आपस में बहुत अधिक मेल-मिलाप था। पिछले कुछ समय से संजीव की चाची बीमार रहने लग गई थी। पहले तो गांव के डॉक्टरों से उसे कुछ दिनों तक दवाई करवाई गई परन्तु उसे कोई आराम नहीं आया तो संजीव का चाचा कुलबीर अपनी पत्नी को शहर के एक अस्पताल में ले गया। अस्पताल में डॉक्टरों ने उसके कुछ जरूरी टैस्ट किए और दवा लिख दी। उस दवा से संजीव की चाची को थोड़ा-थोड़ा आराम आना शुरू हो गया। डॉक्टरों ने कुलबीर को उसकी पत्नी की बीमारी के बारे में ज्यादा कुछ नहीं बताया, बस इतना कहा कि इसकी दवा लंबे समय तक चलती रहेगी। कुलबीर अपनी पत्नी का डॉक्टरी इलाज तो करवा ही रहा था। अंधविश्वासी मानसिकता होने के कारण वह बाबाओं की शरण में भा जाता रहता था। अपनी पत्नी की संतुष्टि के लिए कुलबीर उसे लेकर अनेक बाबाओं, द्वारा किए जाने वाले तंत्र-मंत्र के बावजूद भी उसकी पत्नी का स्वास्थ्य धीरे-धीरे बिगड़ता ही चला जा रहा था। कुलबीर ने बाबाओं के निर्देशानुसार अनेक प्रकार टोने-टोटके भी आजमाए परन्तु आराम कहीं से नहीं आ रहा था। इधर चाची के स्वास्थ्य में कोई सुधार नहीं आ रहा था, उधर संजीव की एक नई मुसीबत ने आकर घेर लिया। संजीव का मन अपने मकैनिकी के काम से पूरी तरह से उपराम होता चला जा रहा था। संजीव को बात-बात पर डर लगने लग गया। रात को उस डर वाले सपने आना शुरू हो गए। दिन में अपनी दुकान पर काम करते समय उसे महसूस होने लगता कि कोई चीज़ पीछे से आकर उसका गला घोंट कर मार देना चाह रही थी। इससे बचने के लिए वह अपनी दुकान पर काम करता हुआ उठकर चीखता-चिल्लाता हुआ सड़क पर भाग खड़ा होता। ऐसे में उसके जानकार उसे पकड़कर उसके घर में छोड़ आते। कई बार घर में भी उसे ऐसा ही डर लगने लग जाता तथा वह घर में से चीखने-चिल्लाने लग जाता तथा घर से बाहर की ओर भगाने की कोशिश करता परन्तु घर वाले उसे पकड़ कर कमरें में बंद कर देते।

संजीव की ऐसी हालत देखकर उसके घर वाले उसे लेकर बाबाओं की शरण में जाना शुरू हो गए। वे एक के बाद अनेक बाबाओं के पास संजीव को लेकर जाते रहे, परंतु आराम कहीं से भी नहीं आ रहा था तथा उस पर किसी द्वारा किया कराया एवं तंत्र-मंत्र जादू टोने का असर होना बता दिया। बाबाओं की चौकियों पर जाने से संजीव की हालत और ज्यादा बिगड़ती चली गई।

इसी दौरान बीमार रहने के कारण संजीव की चाची का देहांत हो गया। अब संजीव को सपने में उसकी चाची आकर उसका गला घोटती हुई दिखाई देने लग गई। अपने चाचा कुलबीर पर संजीव को बहुत अधिक गुस्सा आना शुरू हो गया। कुलबीर को देखते ही वह उसे मारने के लिए उतावला हो जाता। संजीव की ऐसी हरकतें देखकर उसके घर वाले एवं जानकार सभी बहुत अधिक परेशान रहने लगे। उन्हें जहां कहीं भी कोई कहता, उसे लेकर वे उसी बाबा अथवा भगत जी की शरण में चले जाते। परंतु नतीजा वही ढाक के तीन पात। उसकी हालत और भी अधिक बिगड़ती चली जा रही थी। अब संजीव के साथ-साथ उसके सारे परिवार वालों की नींद भी हराम हो चुकी थी।

ऐसे में उनका एक रिश्तेदार संजीव की हालत देख कर उसे अपने साथ लेकर मेरे पास मनोरोग परामर्श केंद्र में आ गया। मैंने उसे अपने पास बैठा कर उसकी सारी राम कहानी सुनी और फिर मनोवैज्ञानिक काउंसलिंग के द्वारा उसके मन में बैठे हुए कथित-भूत-प्रेतों के मनोभावों को दूर किया। अब वह अपने आप को अत्यधिक राहत में महसूस कर रहा था। फिर मैंने उसे दो-तीन बार परामर्शा केंद्र पर बुलाकर उसकी मानसिक मजबूती के लिए मनोवैज्ञानिक तौर पर सुझाव दिए

उसके बाद संजीव को किसी भी प्रकार की कोई मानसिक परेशनी नहीं हुई।

कारण :

क्या संजीव का पूरा खानदान ही अंधविश्वासी मानसिकता वाला था। उसकी चाची कैंसर से पीड़ित थी। उसमे कैंसर रोग-धीरे-धीरे बढ़ता चला जा रहा था। अस्पताल में शुरू में जो उसके टेस्ट करवाए गए थे, वे सभी सामान्य थे परन्तु कैंसर का टैस्ट बड़े शहरों में होता है। अंत: डॉक्टरों ने कैंसर टैस्ट करवाने के लिए सैंपल बड़े शहर की एक लैबॉरटरी में भेज दिया। उसका परिणाम आने में काफी समय लग गया था। डॉक्टर केवल संदेह के आधार पर उसके रोग के बारे में परिवार वालों को कुछ बताना नहीं चाहते थे। दवाओं से आराम न आ सकने के कारण कुलबीर ने अपनी पत्नी को लेकर बाबाओं की शरण में जाना शुरू कर दिया। किसी ने उसके गले में धागा-ताबीज़ बना कर डाल दिए और किसी ने कई अन्य प्रकार के उपाय बता दिए। उनमें से एक बाबा ने कुलबीर को कुछ सरसों अभिमंत्रित करके दे दी और तागीद कर दी कि सरसों को अपने घर पर आंगन में बिखेर दें। एक दिन कुलबीर सरसों को अपने आंगन में तथा अपने घर के आस-पास बिखेर रहा था तो संयोगवश पास से गुजरते हुए संजीव पर भी सरसों के कुछ दाने गिर गए। संजीव को पहले से ही मालूम था कि कुलबीर अपनी पत्नी को लेकर बाबाओं के पास जाता रहता है। जब संजीव के ऊपर अपने अब अपने चाचा द्वारा बिखेरी गई सरसों के कुछ दाने गिरे तो अंधविश्वास में उसकी चेतना शक्ति को कुंद कर दिया उसके अवचेतन मन में डर बैठ गया कि कुलबीर ने जो सरसों उसके ऊपर गिराई है, वह चाची की बीमारी को उस पर डालने के लिए किए गए तंत्र-मंत्र की ही एक प्रक्रिया है। अपने ऊपर किए गए इस कथित तंत्र-मंत्र के कारण संजीव मानसिक तौर पर परेशान रहने लगा। अपने दस्तकारी काम में उसका मन लगना बंद हो गया। इस कारण धीरे-धीरे उसका बिजली रिपेयर काम काम बहुत कम होता चला गया। जब उसकी मानसिक परेशानी बढ़ जाती तो वह अपनी दुकान से अथवा घर से उठकर भाग खड़ा होता। परेशान होकर जब उसे लेकर बाबाओं की शरण में गए और बाबाओं ने उस पर कोई जादू-टोना किये जाने की बात कर दी तो संजीव को अपने चाचा द्वारा उस पर सरसों बिखेरने की बात स्मरण हो गई। अब उसके दिमाग में रह-रहकर एक ही ख्याल आता के उसके चाचा कुलबीर ने अपनी पत्नी की बीमारी अभिमंत्रित करके सरसों द्वारा उस पर गिरा दी है। इसी कारण वह अत्यधिक परेशान रहने लग गया।

अंत में तर्कशीलों द्वारा चलाए जा रहे मनोरोग केंद्र में उसे उसी की समस्याओं के वैज्ञानिक कारणों को टटोलकर, फिर उसे समझा कर उसके दिमाग में अंधविश्वास की पट्टी को हटाया गया तथा उसे वास्तविकता से अवगत करवाया गया। तब से वह पूर्ण सुख-शांति के साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहा है।

नोट: यह एक सत्य घटना है। परिस्थितिवश पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं। 94163-24802

... पृष्ठ 8 का शेष एक साथ खाना खाएं। जेलर रायबहादुर चंपालाल के यहां से एक बड़ी थाली मंगवाई गई और उनके चारों और सभी बैठ गए। कुछ खड़े भी रहे। थाली में से एक-एक, दो-दो कौर खाए, और हंसते हुए वे उठ खड़े हुए। आज उन्होंने अच्छे कपड़े पहने थे। ठाकुर रोशन सिंह ने आगे बढ़कर इत्र की एक शीशी निकाली और सभी के वस्त्रों पर थोड़ा-थोड़ा लगाया। इसके बाद बेड़ियां पहनाई जाने लगीं। क्रांतिकारी रोज की भांति पहरे के बीच अदालत रवाना हुए। लारी चलते ही क्रांतिकारी गीतों का समय बंध गया, पर आज मन की हिलोरों ने गानों में अजीब लय भर दी थी। काजी नजरुल इस्लाम का वह गाना भी गाया गया, जिसकी पंक्तियां थीं, शाकल परा छल मोदेर ऐ शाकल परा छल। यानी हमारा बेड़ियां पहनना छल मात्र है, ये बेड़ियां छल मात्र है। इसके बाद उन्होंने भीड़ के बीच देशभक्ति से भरे गगनभेदी नारे लगाए।

'रिंग थियेटर' में आज सवेरे से बहुत भीड़ थी। पुलिस के अलावा अनेक योरोपियन सार्जेंट पूरी सतर्कता से चहलकदमी कर रहे थे। सब ओर हलचल थी। जज़ के अदालत में आते ही एकबारगी सन्नाटा छा गया। उसने जो फैसला सुनाया, उसमें बिस्मिल, अशफाक उल्ला, रोशन सिंह और राजेन्द्र लाहिड़ी को फांसी तथा अन्य क्रांतिकारियों को लंबी सजाएं दी गई। सभी ने आगे बढ़कर बिस्मिल, राजेन्द्र बाबू और रोशन सिंह के चरण स्पर्श किए। जोशीले नारों के साथ बिस्मिल से आगे बढ़कर गाया, हैफ जिस पे हम तैयार थे, मर जाने को दूर तक यादे-वतन आई थी समझाने को।

पुराने 'रिंग थियेटर' में ऐसी सदाएं आज भी गूंजती है, पर उन्हें कोई सुनता नहीं। -97608-75491

तुम्हारी जोंकों की क्षय

– राहुल सांकृत्यायन

जोंकें ? – जो अपनी परवरिश के लिए धरती पर मेहनत का सहारा नहीं लेती। वे दूसरों के अर्जित खून पर गुजर करती हैं। मानुषी जोंके पाशविक जोंकों से ज्यादा भयंकर होती है। इन्होंने मानव–जीवन को कितना हीन और संकटपूर्ण बना दिया। इन जोंकों की उत्पत्ति कैसे हुई? आरंभिक मनुष्य असभ्य था, वह जंगल में रहता था। लेकिन अपनी जीविका वह धरती में खोजता था। वह शिकार करता था। वह जंगल में फल तोड़ता था, लेकिन दूसरे की कमाई, दूसरे के खून को चूस कर गुजारा करना पसन्द नहीं करता था। आत्मरक्षा के लिए वह अपना नेता भी बनाता था। समाज का साधारण संगठन भी करता था। लेकिन खून चूसने वाले के लिए वहाँ स्थान न था। शिकारी अवस्था से मनुष्य पशु–पालक की अवस्था में आया। अब भी उनके नायक और शासक खुद अपनी भेड़ और गायें रखते थे। हाँ, अब कभी–कभी एक-आध भेड़–गाय उनके पास पहुँचने लगी और इस प्रकार बहुत हल्के रूप में मानुषी जोंकों का आविर्भाव हुआ। कृषक की अवस्था में पहुँचने पर नेता और शासकों का प्रभाव बढ़ा। उन्होंने राजा का रूप धारण करना शुरू किया। यद्यपि पहले समाज की आत्मरक्षा के लिए शस्त्र और शासन की सुव्यवस्था का भार उन पर सौंपा गया था और उनका पद तभी तक सुरक्षित था जब तक कि उन कार्यों के संचालन की योग्यता उनमें मौजूद रहती। योग्यता द्वारा निर्वाचित राजा भेंट और कर में अधिक धन एकत्र करने में सफल हुआ और इस प्रकार योग्यता के अतिरिक्त धन की शक्ति उसके हाथ आई। अब जहाँ वह अपने शासक और नेता होने के जरिये लोगों पर प्रभाव डालता था, वहाँ धन का प्रलोभन देकर भी कुछ लोगों को अपनी ओर खींच सकता था। इस तरह वह जहाँ कितने ही अत्याचार भी करने का साहस रखता था, वहाँ साथ ही यह भी कोशिश करने लगा कि उसके बाद उसका स्थान उसके लड़के को मिले।



शताब्दियों के प्रयत्न से योग्यता का सबब भाड़ में चला गया और राजा की ज्येष्ठ संतान राजा बनने लगी। संपूर्ण राज–परिवार का खर्च दूसरों के ऊपर लदने लगा। इन जोंकों ने यही नहीं कि अपनी परिवरिश दूसरों की कमाई से चलानी शुरू की, बल्कि कितने ही धरती से धन उपजाने वाले को भी नौकर–परिचारक रखकर समाज को उनके श्रम से वंचित रखा। खानदानी राजा तब तक इस प्रकार शोषण, निठल्लापन और अपनी वासना–तृप्ति के लिए तरह–तरह की गन्दगी फैलाते रहते जब तक कि जनता को ऊबते देखकर कोई सेनापति या मन्त्री राजा का वध कर नये राजवंश की नींव नहीं डालता। जब से राजा अधिक सम्पत्ति का स्वामी और गैर–जवाबदेह शासक बनने लगा, तब से 'यथा राजा तथा प्रजा' का अनुकरण करते हुए कितने ही लोक स्वयं भी जोंक बनकर आराम से सुख और चैन की जिन्दगी बसर करने लगे। राजा भी प्रलोभन दे–देकर उन्हें इसके लिए उत्साहित करते थे। धरती से धन पैदा करने वाले का स्थान समाज में बहुत नीचा हो गया था और राजा, राजकुमार, पुरोहित, मंत्री, सामंत ही नहीं, बल्कि उनके परिचारक, भी धन कमाने वालों से अधिक सम्मानित समझे जाते थे। शारीरिक श्रम को बहुत हेय दृष्टि से देखा जाता था। अब जोंकों की एक और श्रेणी भी पैदा हो गई जो कारीगरों और किसानों द्वारा उत्पादित चीजों के क्रय–विक्रय का काम करती थी। इन साधारन बनियों ने लाभ–वृद्धि के साथ–साथ अपने काम को भी अधिक विस्तृत और सुव्यवस्थित किया। इनके बड़े–बड़े दल (कारवाँ) देश के एक कोने की चीज़ें दूसरे कोने में पहुँचाते और आँख मूँद कर नफा कमाते थे। राजा, राजकुमारों के बाद अपनी राज–सेवा के उपहार में जिन मन्त्रियों और सेनानायकों को बड़ी–बड़ी जागीरें मिलीं, वे भी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे, और उनके बाद नम्बर था बनियों का।

समाज में अब भी पुराना भाव कभी–कभी मौज मारता था जब कि किसान की कमाई को सबसे अच्छी कमाई समझा जाता था। राजचाकरी और वाणिज्य को निम्न श्रेणी की जीविका मानते थे, लेकिन दुनिया का सुख और वैभव तो उसी के लिए है जिसके पास धन है, चाहे वह धन किसी भी तरह प्राप्त किया गया हो। राजकार्य और व्यापार की तो बात ही क्या, सूद के लाभ–जिसे कि 'पाप का धन' अभी हाल तक समझा जाता रहा है–को भी कोई छोड़ने के लिए तैयार न था।

सामन्त दासों और अर्द्ध-दास किसानों की पलटन से खेती कराते तथा कारीगरों से बेगार में चीज़े तैयार कराते। व्यापारी स्थल और जलमार्ग से व्यापार ही नहीं करते थे, बल्कि कभी-कभी कुछ कारीगरों को जमा कर उनसे वाणिज्य की कितनी ही चीज़ें भी बनवाते थे। बिना मेहनत की कमाई अब सबसे इज्जत की कमाई हो गई थी। और क्यों न हो, जब कि हजारों बरस से पुरोहित लोग खुद इस लूट के नफे से मौज करते आ रहे थे। उन्हीं के हाथ में भले-बुरे की व्यवस्था थी।

बढ़ते-बढ़ते अवस्था जब यहाँ तक पहुँची तो समझा जाने लगा कि राजा अपनी पुरानी तपस्या का उपयोग करने या खुदा की न्यामत को हासिल करने के लिए धरती पर आया है, तब बहुत हुआ तो राजवंश के संस्थापक प्रथम व्यक्ति ने कुछ योग्यता का परिचय दिया और उसके उत्तराधिकारी-चाहे योग्य हों या अयोग्य, सिर्फ भोग-विलास के लिए राजसिंहासन पर बैठते थे। मुफ्त के भोग-विलास को देखकर किसके मुँह में पानी न भर आता। और उसके लिए जब राजा लोग आपस में लड़ने लगते, तो योग्य सेनानायकों का महत्व बढ़ना जरूरी था। फिर उनकी जागीरें बढ़ीं और हालत यहाँ तक पहुँची कि राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो गया।

शिकार और कृषि के साथ पहले जोकों का जन्म होता है। राजाशाही युग में उनकी संख्या कुछ बढ़ती है और राजकुमार, राजकर्मचारी, व्यापारी तथा इनके परिचारक जोंकों की श्रेणी में शामिल होकर संख्या को और बढ़ा देते हैं। जब राजा सामन्तों के हाथ की कठपुतली हो जाते हैं, तब सामन्तों की स्वेच्छाचारिता का पृष्ठपोषण करना भी अपना कर्तव्य समझते हैं-ऐसी सामन्तशाही के युग में जोंकों की संख्या कई गुणा बढ़ जाती है। इस युग का अन्त होने के समय यूरोप के बनियों को अपना प्रभाव बढ़ाने का नया मौका मिलता है। इंगलैंड के व्यापारी भी पुर्तगाल, स्पेन आदि के व्यापारियों की देखादेखी दुनिया के दूर-दूर देश में व्यापार करने लगे। इंग्लैंड मे उनके पास अपार सम्पत्ति जमा होने लगी। यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों में व्यापार के सम्बन्ध में प्रतिद्विन्द्विता बढ़ने लगी, तो भी धरती का बहुत-सा हिस्सा अछूता था और सभी साहसियों के लिए कही न कहीं काम का क्षेत्र मौजूद था। अट्ठारवहीं शताब्दी के अन्त तक यूरोप के व्यापारियों में अंग्रेजों ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। उनके पास दुनिया में सबसे अधिक बाजार थे। उनके माल से भरे जहाज इंगलैंड से बाजारों को और बाजारों से इंगलैंड को छै-छै महीने चलकर पहुँचते थे। उस समय की लकड़ी की नावों-जिन्हें पाल और पतवार के सहारे एक जगह से दूसरी जगह ले जाया जाता था-में यात्रा बड़ी संकट की थी, लेकिन अपार नफे के सामने संकट क्या चीज़ थी। व्यापारियों को सबसे अधिक चिन्ता थी-अधिक से अधिक परिणाम में माल कैसे तैयार हो। इसी समय इंग्लैंड में इंजिन का आविष्कार हुआ। भाप से चालित यन्त्र अधिक परिमाण में और ज्यादा तेजी के साथ माल तैयार करने लगा। इंजिनों को रेल और जहाज में लगा देने पर लम्बी-लम्बी यात्राएं भी छोटी हो गई और खतरा तथा परतन्त्रता भी कम होती गई।

यन्त्रों के आविष्कार से, उनके द्वारा बनी चीजों की अपेक्षा हाथ की बनी चीजें महँगी पड़ने लगीं और हाथ के कारीगर बेकार होने लगे। बेकारी से कुपित होकर कारीगरों ने कितने ही कारखानों को तोड़ा, जगह-जगह बलवे हुए। लेकिन अब व्यापारियों की शक्ति साधारण नहीं रह गई थी। धन के कारण राजदरबारों में उनका प्रभाव और सम्मान सामन्तों की तरह होने लगा था और धन के बल पर शासन-यन्त्र पर वह अपना अधिकार जमा रहे थे। जिस यन्त्रचालित कारखानेदार-पूँजीपति के पीछे राजशक्ति थी, उसका मुकाबला ये कारीगर क्या करते? धीरे-धीरे उनके बलवे तो ठंडे पड़ गये जिसमें दमन के अतिरिक्त एक यह भी कारण था कि यान्त्रिक कारखाने मुख्यत: इंगलैंड में ही स्थापित हुए थे और इंगलैंड के पास सारी दुनिया का बाजार पड़ा हुआ था। इस प्रकार वहाँ पूंजीपति सभी कारीगरों को बेकार न करके उन्हें नये-नये कारखानों में लगाते जाते थे। जैसे ही जैसे व्यापार चमकता गया वैसे ही वैसे पूँजीपतियों के पास अपार धनराशि जमा होती गई। वहाँ का राज शासन भी पूँजीपतियों के हाथ चला गया और राजशाही या सामन्तशाही सरकार की जगह पूँजीवादी सरकार स्थापित हुई। इसका पवित्र कर्तव्य था पूँजीपतियों के स्वार्थों की रक्षा करना।

इस नई आर्थिक व्यवस्था से संसार में तरह-तरह की उथल-पुथल होने लगी। देश के श्रमिक पूँजीपतियों के अर्थदास बनने लगे। जिन देशों पर पूँजीवादियों का शासन था, वहाँ पर भी उसी स्वार्थ को सामने रखकर काम लिया जाने लगा। इंगलैंड में सामन्तशाही का स्थान पूँजीशाही ने लिया था, किन्तु हिन्दुस्तान में उस वक्त तक सामन्तशाही ही चल रही थी। तो भी अंग्रेजी पूँजीशाहों ने अपने देश की तरह हिन्दुस्तान से सामन्तशाही को लुप्त होने नहीं दिया। उसी का परिणाम है कि यद्यपि सारे भारतवर्ष पर अंग्रेज़ी पूँजीशाही का शासन है तो भी भीतर सामन्तशाही को रियासतों और बड़ी-बड़ी जमींदारियों

के रूप में कायम रखा गया है। पूँजीवाद मनुष्यों को अर्थदास बनाता है और बराबर बेकारी पैदा करके उन्हें यातना में ढकेलता है, यह बात तो अब स्पष्ट हो चुकी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक बाजारों और साम्राज्य के विस्तार के लिए आपस में लड़ती यूरोप की राजशक्तियों ने यह भी दिखला दिया था कि पूँजीवाद युद्धों का प्रधान कारण है। इसी समय जर्मनी में एक विचारक पैदा हुए जिसका नाम था कार्ल मार्क्स। उसने बताया कि बेकारी और युद्ध पूँजीवाद के अनिवार्य परिणाम रहेंगे बल्कि जितना ही पूँजीवाद की संरक्षकता में यंत्रों का प्रयोग बढ़ता जायेगा, बेकारी और युद्ध उतना ही भयानक रूप धारण करते जायेंगे।–उसने इससे बचने का एक ही उपाय बतलाया–साम्यवाद। जर्मनी, फ्रांस–जहाँ भी उसने अपने इन विचारों को प्रकट किया, वहाँ की सरकारें उसके पीछे पड़ गई। पूँजीपति समझ गये कि साम्यवाद–उनकी जड़ काटने के लिए है। उसमें तो सारी सम्पत्ति का मालिक व्यक्ति न होकर समाज रहेगा। उस वक्त हर एक को अपनी योग्यता के मुताबिक काम करना पड़ेगा और आवश्यकता के मुताबिक जीवन–सामग्री मिलेगी। सब के लिए उन्नति का मार्ग एक–सा खुला रहेगा। कोई किसी का नौकर और दास नहीं रहेगा। भला धनी इसे कब पसन्द करने वाले थे? लेकिन अभी तक मार्क्स के विचार सिर्फ हवा में गूँज रहे थे। मजदूरों पर उनका असर बिल्कुल हल्का–सा पड़ रहा था, इसलिए पूँजीवादियों का विरोध तेज न था–खास करके जबकि उन्होंने देखा कि एक समय के आग उगलने वाले प्रलोभनों को हाथ में आया पाकर वे पूँजीवाद के सहायक बन सकते हैं। दुनिया की जोंकों ने समझा कि साम्यवाद हमेशा हवा और आसमान की चीज रहेगा और उसे कभी ठोस जमीन पर उतरने का मौका नहीं मिलेगा।

पूँजीवाद धीरे–धीरे हर मुल्क में बढ़ रहा था। यूरोप में तो उसकी गति बड़ी तेज थी। अंत में सिपाहियों का देश जर्मनी भी उसकी बाढ़ से न बच सका। बल्कि प्रतिभाशाली जर्मनों ने यन्त्रों के आविष्कार और प्रयोग में और भी अधिक योग्यता दिखलायी। पूँजीवादी सरकारों ने दाँव–पेंच लगाकर दुनिया के हिस्से–बिखरे कर लिए। जर्मनी ने देखा कि उसके लिए तो कहीं जगह नहीं। इसके लिए उसने वर्षों की तैयारी की, क्योंकि वह जानता था कि हथियार के बल पर उसे नया बाज़ार मिल सकता है। इसी आकांक्षा, इसी तैयारी का परिणाम था 1914 ई० का महायुद्ध। पूँजीवादी फैक्टरियों में गरीबों का खून चूसकर तृप्त न थे। वे बाजार और नफ़ा लूटने के लिए बड़े पैमाने पर नर–संहार करना चाहते थे। जो कहते हैं कि महायुद्ध ऑस्ट्रिया के युवराज की हत्या के कारण हुआ था, वे या तो भोले–भाले हैं या जान–बूझकर झूठ बोलते हैं। युद्ध हुआ था जोंकों की खून की प्यास के कारण। जर्मनी की जोंके परास्त हुईं। फ्रांस और इंगलैड की जोंकें विजयी। इन जोंकों की लड़ाई में एक फायदा हुआ कि दुनियाँ के छठे हिस्से–रूस से जोंकों का राज उठ गया। अब वहाँ ईमानदारी से कमाकर खाने वालों का राज था। आरम्भ में दुनिया की जोंकों ने पूरी कोशिश की कि वहाँ साम्यवादी शासन न होने पाये। लेकिन रूस के मजदूरों और किसानों ने हर तरह की कुर्बानी करके, जान पर खेलकर अपनी स्वतंत्रता की रक्षा की। लेनिन के नायकत्व में संस्थापित रूस की साम्यवादी सरकार दुनिया की जोंकों की आँखों में काँटे की तरह चुभ रही थी। सारा पूँजीवादी जगत् देख रहा था कि दुनिया के सभी मजदूर–किसान रूस की तरह स्नेह भरी निगाह से देखते थे और उससे अन्त:प्रेरणा ले रहे थे।

महायुद्ध के अन्त में जोंकों की रक्त–पिपासा के नंगे नाच को देखकर तथा रूस की क्रान्ति से प्रभावित होकर यूरोप के कितने ही देशों के मजदूरों में साम्यवाद का जोर बढ़ा। सामग्री तैयार थी, उसका उपयोग करके वहाँ नेतृत्व जिन कमजोर दिलवाले शिक्षितों के कन्धों पर था, उन्होंने अपनी कायरता और कमजोरी को जनता के मत्थे मढ़ा और इस प्रकार श्रमजीवी–जागृति का वह वेग विश्ंखलित हो गया। पूँजीपतियों और अवसरवादियों ने उस अवसर से फायदा उठाया। पूँजीपति महत्वाकांक्षी साम्यवादी नेताओं–जो कि आपस की होड़ और अनबन के कारण अपने लिए किसी बड़ी चीज की आशा न रखते थे–को आसानी से अपनी ओर मिला सकते थे, इसके लिए सिर्फ दो चीजों की जरूरत थी : एक तो आदर्श–द्रोही नेता को नेतृत्व दे दिया जाय और इसमें पूँजीवाद को कोई नुकसान तो था नहीं, दूसरे, उसी थैली से मदद की जाय और यह बात भी पूँजीपतियों के लिए कड़वी नहीं थी, क्योंकि उनके हाथ से सारी की सारी थैली को मजदूर छीन लेने वाले थे। इस प्रकाप पूँजीवाद ने नया रूप–'फासिज्म' धारण किया। उसने असली उद्देश्य को छिपाकर सामन्तशाही के विनाशक पूँजीवादी के हथकंडे इस्तेमाल किये और राष्ट्रीयता के नाम पर जनता को अपने झंडे के नीचे एकत्रित होने के लिए आवाहन किया। वर्षों से मजदूर और किसान अपने शिक्षित मध्यम श्रेणी के साम्यवादी नेताओं की कायरता और विश्वास से तंग आ गये थे। उन्होंने फासिज्म को राष्ट्रीय पुनरुज्जीवन का संदेशवाहक

समझ कर मदद दी, और, इस प्रकार फिर से पूँजीवाद ने अपने को मजबूत किया। शोषकों और शोषितों को कायम रखने वाले फासिज्म श्रमिकों के दु:खों को भीतर से दूर कर नहीं सकते थे, इसलिए उन्होंने दूसरे देशों पर नजर गड़ायी। इतनी में फासिज्म के जन्म का यह इतिहास है।

जर्मनी की जोंकें भी महायुद्ध में पराजित हुई, लेकिन विजेता कभी यह नहीं चाहते थे कि पराजित जोंकें बिल्कुल नष्ट कर दी जाएँ। वह जानते थे कि जर्मनी में जोंकों का लोप इंगलैंड और फ्रांस पर पूरा प्रभाव डालेगा। इसलिए उन्होंने उन्हें जीते रहने दिया। लड़ाई के बाद जर्मनी के श्रमजीवी भी अपने देश की जोंकों के अत्याचार को देखते-देखते तंग आ गये थे और उनमें बड़ी जागृति हुई तो भी शब्द के प्रयोग में प्रवीण, किन्तु मैदान में अत्यन्त कायर शिक्षित नेतागण ने उन्हें धोखा दिया और वे स्वर्ण-युग को लाने का दिलासा दे-देकर दिन बिताते रहे। जोंके इतनी बेवकूफ न थीं। वे अवसर ताक रही थीं। जब साम्यवादी इस तरह अपने कीमती समय को बर्बाद कर रहे थे, उस समय जोंकें भी मनसूबे बाँध रहीं थी। युद्ध के बाद की घटनाओं को देखकर पूँजीवादियों को विश्वास हो गया कि उनके स्वार्थों की रक्षा वही कर सकता है जो स्वयं श्रमजीवी-श्रेणी का हो और जिसके दिल में पूँजीवादी श्रेणी के अस्तित्व की आवश्यकता ठीक जँचती हो। नात्सिज्म ने जर्मनी में जातीय पराभव और अपमान के नाम पर लोगों को अपनी ओर खींचना शुरू किया। पूँजीवादियों ने हिटलर के भूरी कमीज वाले संगठन को दृढ़ करने के लिए अपनी थैलियाँ खोल दीं। नेताओं के विश्वासघात से पीड़ित और कर्त्तव्यविमूढ़ श्रमजीवी-श्रेणी धीरे-धीरे हिटलर के फरेब में फँसने लगी और 1933 तक उसने अपनी शक्ति इतनी मजबूत कर ली कि शासन की बागडोर उसके हाथ आ गई। हिटलर के शासन के चार वर्षों-1933 से 1937 के बीच मजदूरों की जीवन-वृत्ति जर्मनी में आधी हो गई और पूँजीपति चैन की बांसुरी बजाने लगे तो भी पूंजीवाद के नये 'अवतार' फासिज्म और नात्सिज्म श्रमजीवी जनता की आँख में धूल झोंकना अच्छी तरह जानते है। हिटलर ने जर्मनी के स्वाभिमान को लौटाने और वृहत्तर जर्मनी के निर्माण का प्रोग्राम उनके सामने रखा। फ्रांस और इंगलैंड का पूँजीवाद पूँजीपतियों के वैयक्तिक स्वार्थ और अदूरर्शिता के कारण श्रमजीवी जनता को अपनी ओर उतना खींच नहीं सकता था, इसलिए उन्हें फूँक-फूँक कर कदम रखना पड़ता था। उधर जर्मनी पूँजीपतियों के स्वार्थ को आँख से ओझल रखकर राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा को जबर्दस्त शराब पिला रहा था। दोनों ही तरफ जोंकों के स्वार्थ का सवाल था, और दोनों ही तरफ की जोंकें अपने-अपने स्वार्थ के लिए जबर्दस्त तैयारियाँ कर रही थीं।

तीन वर्ष की तैयारी के बाद हिटलर ने जर्मन-स्वाभिमान लौटाने के लिए सबसे पहले कुछ करना चाहा। जापान ने मंचूरिया को हड़प कर दिखला दिया था कि इंगलैंड, फ्रांस और अमेरिका के पूँजीवादी आपस में असहमत और लड़ाई के लिए तैयार नहीं है। वह फ्रांस और इंगलैंड के भीतर मतभेदों को भी जानता था और समझता था कि इंगलैंड सिर्फ अपनी पगड़ी बचाना चाहता है। यही समझकर 7 मार्च 1936 ई० को हिटलर ने जर्मन फौजें राइनलैंड में उतार दीं और फ्रांस तथा इंगलैंड मुँह ताकते रह गये। दो बरस चार दिन बाद-जबकि मुसोलिनी अबीसीनिया में इंगलैंड की कलई खोल चुका था-11 मार्च 1938 को हिटलर ने ऑस्ट्रिया को हड़प लिया। बाहर की जोंकें तिलमिला कर रह गईं। लेकिन जर्मन जोंकों की प्यास न इतने से बुझ सकती थी और न जर्मन जनता को चिरकाल तक माखन छोड़ आलू खाने के लिए तैयार रखा जा सकता था। आलू खाने को राजी रखने के लिए न जाने अभी हिटलर को और कितने काण्ड करने होंगे। 1 अक्तूबर, 1938 ई० को हिटलर ने सुडेटेनलैंड को चेकोस्लोवाकिया से छीन लिया और 15 मार्च, 1938 ई० को सारी चेकोस्लोवाकिया को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। दुनिया भर की जोंके अगले युद्ध के लिए जबर्दस्त तैयारियाँ कर चुकी हैं। अगले युद्ध के नर-संहार के सामने पिछला महायुद्ध कोई अस्तित्व नहीं रखेगा। जर्मनी के पास जहाँ अब आठ करोड़ आदमी जोंकों के लिए नये बाजार पर कब्जा करने के वास्ते खून बहाने को तैयार हैं, वहाँ उसने हवाई, सामुद्रिक और स्थानीय युद्धों के लिए भयंकर अस्त्र-शस्त्र तैयार कर रखे हैं। अब उसके हवाई जहाजों की एक चढ़ाई में पौन करोड़ आबादी का लंदन निर्जन हो सकता है। लड़ाई में मरने वाले सिर्फ सैनिक नहीं रहेंगे, अब तो मरने वालों में अधिक संख्या होगी निरपराध नागरिकों की। कोई बूढ़े-बच्चों की परवाह नहीं करेगा। सभी जोंकें बड़े जोश के साथ संसार में प्रलय लाने की तैयारियाँ कर रही हैं। जिस वक्त मनुष्य जाति ने अपने भीतर पहली जोंक पैदा की थी, उस वक्त उसे क्या मालूम था कि जोंकें बढ़कर आज उसे यह दिन दिखायेंगी। इसके विनाश के बिना संसार का कल्याण नहीं। जोंकों! तुम्हारी क्षय हो!

धर्म के नाम पर

अशोक

दुनिया भर में भारत की पहचान विज्ञानवादी, तर्कवादी व दूरदृष्टि रखने वाले महापुरुषों का देश, पराक्रमी शूरवीरों का देश के रूप में है। पूरी दुनिया के लोग हमारे महापुरुषों द्वारा किए गए त्याग व पराक्रम के कारण सम्मान करते हैं, परन्तु भारत का सत्य क्या है? यह भारत में रहने वाले अधिकांश लोगों को भी नहीं मालूम।

सिर में मस्तिष्क होते हुए भी मस्तिष्क का कभी इस्तेमाल न करने वाले लोगों की संख्या भारत में ज्यादा हैं, मूत्र वह किसी का भी हो उसको पीना और दूध को पत्थर पर फेंक देना,क्या पीना चाहिए, क्या फेंकना चाहिए इसका अंतर भी न समझने वाले लोगों को हम शिक्षित, विचारवान, बुद्धिमान, विवेकशील, वास्तव में किस शब्द से संबोधित करें यही नहीं समझ में आता।

भारत में अधिकतर लोग अपने दिमाग का उपयोग न करते हुए दूसरों के इशारे पर काम करते हैं, परन्तु दूसरों के इशारे पर किसी प्रकार का विचार न करने वाले, किसी प्रकार का तर्क वितर्क न करते हुए काम करनेवाले जीव को मनुष्य कहना ही गलत होगा। क्योंकि खेती के बैल,घर के कुत्ते भी अपने दिमाग का इस्तेमाल न करते हुए मालिक जैसा कहता है वैसा ही करते हैं अर्थात वे गुलाम होते हैं। बैल और कुत्ते गुलाम होते हुए भी उनमें क्या खाएं क्या न खाएं इतनी अकल तो होती ही है, अपवाद छोड़कर दुनिया में कोई भी प्राणी किसी दूसरे प्राणी की विष्टा व मूत्र न खाता है न पीता है , जिन प्राणियों में बुद्धि की अत्यल्प मात्रा होती है जो बोल पाने में भी असमर्थ होते हैं उन प्राणियों में भी इतनी अकल तो होती ही है कि क्या खाएं और क्या न खाएं ।

परन्तु भारतीय लोग क्या खाएं क्या न खाएं इतनी अकल है कि नहीं यह तय करने का अधिकार मुझे तो कतई नहीं है, अंततः जिसको जो पसंद आए वे खा सकते हैं, पी सकते हैं खाने पीने पर कोई प्रतिबंध नहीं है फिर भी जानवर की विष्टा खाना और मूत्र पीना वैज्ञानिक दृष्टि से अनुचित ही है।

भारतीय लोगों को मूर्ख बनाने का काम चैनल वाले बहुत अच्छे तरीके से करते हैं। भारतीय लोगों के मानसिक गुलाम होने के कारण उन पर विचार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। चैनल वाले जो दिखाते हैं उसी पर लोग विश्वास करते हैं। अनेक चैनलों पर इतने 'विद्वान' लोग हैं कि परिवर्तन का कोई विचार न देते हुए लोगों के दिमाग में कोई विचार ही न पैदा हो ऐसी ही सामग्री सतत दिखाते रहते हैं, चैनल वाले कभी जनजागृति करने वाले कार्यक्रम नहीं दिखाते।

प्रत्येक कार्यक्रम में अंधविश्वास का प्रसार करके लोगों को ईश्वरवादी बनाने का प्रयास किया जाता है,चार पुस्तकें पढ़कर लाखों रुपए वेतन पाने वाला भी वह कार्यक्रम देखता है किन्तु कार्यक्रम के माध्यम से हमारा प्रबोधन नहीं होता, जनजागृति नहीं होती ऐसा मानने वाले और चैनल वालों से सवाल करने वाले कितने लोग हैं ? होंगे भी तो अपवाद स्वरूप ही।

हजारों रुपए का टी वी खरीदते हैं, सैकड़ों रूपए केबल वालों को देते हैं और इनके फायदे का एक भी कार्यक्रम चैनल वाले नहीं दिखाते, फिर भी ये चुप बैठते हैं, उसका कारण मानसिक गुलामी ही है।

फेरीवालों से या बाजार में सब्जी या अन्य सामान लेते समय भाव कम करने के लिए खिच खिच करने वाला यह वर्ग चैनल वालों के विरोध में कोई भूमिका नहीं अपनाता इस पर आश्चर्य होता है।

भारत के लोगों को सत्य एवं विज्ञान जल्दी हजम नहीं होता इसीलिए अज्ञान और झूठे आश्वासनों का शिकार होने वालों की पूरी फौज है।

गुस्सा तो तब आता है जब यह ऊंचे पद पर होता है, गाड़ी बंगले में रहता है, शिक्षित होता है, और रास्ते पर अपना पेट भरने के लिए लोगों को ठगने वाला,अपना जीवन अंधकारमय होते हुए भी दूसरों का भविष्य बताने वाला व्यक्ति उसे गुमराह करके ठगकर पैसा लेकर निकल जाता है, ग्यारह या इक्कीस रूपए जमा करने वाला इसके शरीर पर राख का भभूत लगाता है जिसका इसे गर्व होता है उसी से मालूम पड़ जाता है कि इसका विज्ञान से कभी कोई संबंध रहा ही नहीं, सिर में मौजूद मस्तिष्क का इसने कभी इस्तेमाल किया ही नहीं, इसलिए यह दिमाग में जंग लगे हुए व्यक्ति की तरह ही व्यवहार करता है, यह सत्य परिस्थिति है।

कोई भी काम हमें करना हो और उसके बारे कुछ भी जानकारी न हो तो हम उस विषय के पारंगत अनुभवी व्यक्ति से

सलाह लेते हैं उसका विचार लेना महत्वपूर्ण होता है और इसे अक्लमंदी कहते हैं, परंतु भारत में ऐसा नहीं होता, घर में किसी की शादी करनी है तो व्यक्ति पर कई प्रकार के तनाव व दबाव रहते हैं उसे कुछ समझ में नहीं आता ऐसे समय में वरिष्ठ और अनुभवी व्यक्ति से सलाह की जरूरत होते हुए भी हम ब्राह्मण की मदद लेते हैं, हम सुशिक्षित और सुसभ्य होते हुए भी एक झूठे, पाखंडी मनुष्य के सामने हाथ पसारते हुए हमें शर्म नहीं आती।

दो चार रूपए के लिए गांव गांव घूमने वाले व्यक्तियों से हम मुहूर्त देखकर शादी की तारीख तय करते हैं।

शादी की तारीख तय करते समय मंडप वाला, खाना बनाने वाला, पानी वाला, ये सब किस तारीख को खाली हैं यह देखना जरूरी होते हुए भी हम मुहूर्त देखते हैं।

मुहूर्त देखने के कारण हमें उस मुहूर्त पर मंडप, कैटरर, आदि मूलभूत जरूरतों के लिए भाग–दौड़ करना पड़ता है , मार्च और अप्रैल महीने में भी ब्राह्मणों ने अनेक शुभ मुहूर्त बताया था, अच्छा मुहूर्त देखकर अनेक लोगों ने शादी की तैयारी भी शुरू कर दी थी किन्तु कोरोना का विघ्न आयेगा यह किसी ब्राह्मण या ज्योतिषी के जानकारी में नहीं आई, इसी से साबित हो जाता है कि ये लोग कितने विद्वान होंगे? यह बात बहुजन समाज के समझ में कब आयेगी? शादी के बाद यदि बच्चे नहीं होते तो पाखंडी बाबाओं, पंडे, पुजारियों के पास जाकर पूजा–पाठ और अनेकों कर्मकांड करते हैं।

ढोंगी, पाखंडी बाबाओं, के यहां जाने से बच्चे होते तो शादी करने की जरूरत ही क्या थी ? ऐसा तुकाराम कहते थे, तुका राम ने अपना पूरा जीवन मानसिक गुलामी तोड़ने में लगा दिया परन्तु आज भी लोग मानसिक गुलामी की बेड़ियों में स्वयं और अपने परिवार को भी जकड़े हुए हैं।

लाखों रुपए खर्च करके घर बनाते हैं मजदूरों के साथ दूसरे दर्जे का बर्ताव और गृहप्रवेश कराने वाले पाखंडी के साथ सम्मानजनक व्यवहार करने वालों में मानवता बची हुई है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

संक्षेप में कहना हुआ तो यदि हमें कोई काम करना है और हमें उसके बारे में जानकारी नहीं है तो प्रशिक्षित एवं अनुभवी व्यक्ति से सलाह लेना जरूरी होते हुए भी जिसको उस काम के बारे में कोई जानकारी ही नहीं है उसकी मदद लेने में समय, पैसा और श्रम बर्बाद करते हैं ऐसा करने में हमारी शिक्षा व गुणवत्ता पर प्रश्नचिन्ह लग जाता है हमें उसका एहसास भी नहीं होता।

धर्म के नाम पर दिमाग का इस्तेमाल न करते हुए अंधश्रद्धा पर विश्वास करते हुए काम किया जाता है इसीलिए तो भारत की यह हालत है। व्यक्तिगत जिसे जैसे रहना है खुशी से रहे परन्तु अंधश्रद्धा व तथ्यहीन सलाह देकर जनता को गुमराह करके देश की छवि को तो धूमिल मत करो।

कोरोना से बचने के लिए मूत्र पीने और गोबर खाने को कहना यह देशवासियों का उपहास करने जैसा है, ऐसे लोगों पर कार्रवाई करने के बजाय उन्हें प्रसिद्धि दी जाती है यही समतावादी न्यायवादी व्यवस्था है क्या ? देश विघातक, अविवेकी व तथ्यहीन विधान करने वालों पर सख्त कार्रवाई होनी चाहिए जिससे समाज में अंधविश्वास और गलत विचारों का प्रचार करने की किसी की हिम्मत न पड़े।

संविधान ने प्रत्येक नागरिक को संविधान के दायरे में रहकर अपने विचार रखने का अधिकार दिया है , परन्तु इस अधिकार का गलत इस्तेमाल करते हुए कुछ भी मत बोलो! आपके बोलने का समाज और देश को फायदा होना चाहिए तभी आपके विचारों का महत्व होगा वैसे भारतीय लोगों को सत्य बातें और कानों को सत्य बोला हुआ पसंद नहीं आता इसीलिए मन में सवाल उठता है.......

****

सरकार के पास

–नोमान शौक़

कोई दोष नहीं दिया जा सकता
अपनी ही चुनी हुई सरकार को
सरकार के पास
धर्म होता है
पुस्तकें होती हैं, ज्ञान नहीं
शब्द होते हैं, भाव नहीं
योजनाएँ होती हैं, प्रतिबध्दता नहीं
मुखौटे होते हैं, चेहरा नहीं
आँखें होती हैं, आँसू नहीं
बस, मौत के आँकडे होते हैं
मौत की भयावहता नहीं
सब कुछ होते हुए
कुछ भी नहीं होता
सरकार के पास !

हमारे मानवाधिकार

मुनेश त्यागी

10 दिसंबर को हर साल अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है। संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र के अनुसार आजादी, न्याय और शांति मानवाधिकारों की बुनियाद हैं। संयुक्त राष्ट्र घोषणा पत्र 1948 के अनुसार दुनिया के लोगों को मानवअधिकार प्रदान किए गए हैं। इन अधिकारों का मतलब है कि मानव को आजादी, न्याय, शांति, रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, सुरक्षा, रोजगार, शिक्षा आदि मिले। इन अधिकारों को बुनियादी मानवाधिकारों की संज्ञा दी गई है। हमें इन मानवाधिकारों का स्वयं अध्ययन करना चाहिए, अपने दोस्तों और रिश्तेदारों में विचार विमर्श करना चाहिए और अपने बच्चों को इन मानवाधिकारों की शिक्षा देनी चाहिए। संक्षेप में मुख्य मानवाधिकारों का विवरण इस प्रकार है ....

1. सभी मानव प्राणी आजाद हैं, वे सभी से भाईचारे की भावना से व्यवहार करेंगे,
2. हर एक को जीवन और आजादी का अधिकार है,
3. किसी को गुलाम नहीं रखा जा सकेगा,
4. किसी के साथ भी अत्याचार नहीं किया जाएगा,
5. हर एक प्राणी कानून के समक्ष बराबर है और उसे कानून का समान संरक्षण प्राप्त है,
6. किसी को भी गैरकानूनी रूप से गिरफ्तार नहीं किया जा सकता,
7. जब तक कोई दोषी सिद्ध न हो जाए, उसे बेगुनाह समझा जाएगा,
8. किसी के जीवन में मनमाना हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा,
9. हर एक को पूरे देश में आने-जाने और घर बनाकर बनाकर रहने का अधिकार है,
10. हर एक को राष्ट्रीयता का अधिकार है,
11. हर एक बालिग को अपनी सहमति से शादी करने का अधिकार है,
12. हर एक को संपत्ति रखने का अधिकार है,
13. हर एक को विचार और धर्म की आजादी है,
14. हर एक को धर्म बदलने की आजादी है,
15. हर एक को विचारों की अभिव्यक्ति की आजादी है,
16. हर एक को गुप्त मतदान का अधिकार है,
17. हर एक को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है,
18. हर एक को काम का अधिकार है,
19. हर एक को समान काम का समान वेतन पाने का अधिकार है,
20. हर एक को वाजिब और न्याय पूर्ण वेतन पाने का अधिकार है,
21. हर एक को यूनियन बनाने का अधिकार है और यूनियन में शामिल होने का अधिकार है,
22. हर एक को विश्राम का अधिकार है और सवेतन अवकाश पाने का अधिकार है,
23. हर एक को रोटी, कपड़ा, मकान, स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है,
24. हर एक को मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार है,
25. पूर्ण विकास की शिक्षा जो मानवाधिकारों, मूलभूत आजादी की कद्र करे, जो सभी के प्रति सहनशीलता और दोस्ती बढ़ाए,
26. हर एक को वैज्ञानिक प्रचार-प्रसार के लाभ प्राप्ति का अधिकार है,
27. संप्रदायों के प्रति कर्तव्य का अधिकार केवल इसी में व्यक्तित्व का विकास हो सकता है,
28. इन अधिकारों को रौंदने और विनाश करने का अधिकार किसी को नहीं है।

लोग मेरे गाँव के

ले मशालें चल पड़े हैं,
लोग मेरे गाँव के।
अब अंधेरा जीत लेंगे,
लोग मेरे गाँव के।
कह रही है झोपड़ी,
और पूछते है खेत भी।
कब तलक लुटते रहेंगे,
लोग मेरे गाँव के।
ले मशालें चल पड़े है,
लोग मेरे गाँव के।

- बल्ली सिंह बीमा

2022 का मेडिसिन/फिजियोलॉजी का नोबेल पुरस्कार डॉ. स्वांते पेबो को मिला है। इन्होंने खोजा क्या है?

डॉ. नवमीत नव

आज के समय विज्ञान मानता है कि आधुनिक मानव यानि होमो सेपियंस यानि हम लोग इस धरती पर सबसे पहले अफ्रीका में 300000 साल पहले दिखाई दिए थे। लेकिन हमसे पहले एक अन्य मानव प्रजाति अफ्रीका से बाहर विचरण कर रही थी। यह प्रजाति थी नियंडरथल मानवों की। नियंडरथल मानव 400000 लाख साल पहले धरती पर आये थे और यूरोप व एशिया के अधिकतर भूभाग में फैले हुए थे।

लगभग 70000 साल पहले आधुनिक मानवों ने अफ्रीका से एशिया की धरती पर कदम रखा था। आज से 30000 हजार साल पहले नियंडरथल मानव विलुप्त हो गए। तो इसका मतलब यह हुआ कि लगभग 40000 साल तक होमो सेपियंस और नियंडरथल मानव एक साथ यूरोप और एशिया में विचरण कर रहे थे।

1990 के दशक में वैज्ञानिकों ने मानव के जेनेटिक कोड को देखना शुरू किया। इसके लिए नए नए औजार और नई तकनीकें विकसित हो रही थी। डॉ स्वांते पेबो ने इन्हीं औजारों और तकनीकों की मदद से नियंडरथल मानव के जेनेटिक कोड का अध्ययन करने करने लगे। लेकिन ये तकनीकें नियंडरथल मानव के डीएनए को समझने के लिए कारगर सिद्ध नहीं हो रही थीं क्योंकि नियंडरथल का डीएनए पूर्ण अवस्था में मिलता ही नहीं था।

म्युनिख विश्वविद्यालय में काम करते हुए डॉ पेबो ने माईटोकॉन्डरिया (हमारी कोशिकाओं में मौजूद एक विशेष संरचना जिसे कोशिका का पावर हाउस भी कहा जाता है) में मौजूद डी.एन.ए. का अध्ययन करने पर ध्यान केंद्रित किया। हालांकि माईटोकॉन्डरिया के डी.एन.ए. में कोशिका के डी.एन.ए. से कम जानकारी होती है लेकिन नियंडरथल के केस में यह कोशिका के डीएनए से ज्यादा अच्छी हालत में मिल रहा था इसलिए सफलता की संभावना ज्यादा हो गई थी।

अपनी नई तकनीक के द्वारा पेबो ने नियंडरथल मानव की एक 40000 हजार साल पुरानी हड्डी के माईटोकॉन्डरिया के डी.एन.ए. का सीक्वेन्स बनाने में सफलता हासिल कर ली। और यह पहला सबूत था जो यह बताता है कि आधुनिक मानव नियंडरथल से जेनेटिक तौर पर भिन्न है। यानि यह एक भिन्न प्रजाति है।

2010 में पेबो और उनकी टीम ने नियंडरथल का पहला जेनेटिक सीक्वेन्स छापा। पेबो की इस खोज ने हमें यह बताया कि आज से आठ लाख साल पहले हमारा यानि होमो सेपियंस और नियंडरथल मानव का एक कॉमन पूर्वज इस धरती पर था।

पेबो और उनकी टीम को आधुनिक मानव के डीएनए में नियंडरथल के डीएनए के अंश भी मिले जिससे यह पता चलता है आधुनिक मानव और नियंडरथल मानव के बीच में इंटरब्रीडिंग होती रही है।

लेकिन सिर्फ यही काफ़ी नहीं था। पेबो को दक्षिणी साइबेरिया की एक गुफा में 40000 साल पुरानी इंसानी ऊँगली की हड्डी मिली थी। जब पेबो ने इसकी डीएनए सीक्वेन्सिंग की तो उन्हें कुछ ऐसा मिला जोकि आज तक किसी को नहीं मिला था। इस हड्डी का डीएनए न तो नियंडरथल के डीएनए से मिलता था और न ही आधुनिक मानव के डीएनए से। यह मानव की एक सर्वथा नई प्रजाति थी। इस नई प्रजाति को डेनिसोवा नाम दिया गया क्योंकि जिस जगह यह हड्डी मिली थी उस जगह को डेनिसोवा ही कहा जाता है। डेनिसोवा और नियंडरथल लगभग 600000 साल पहले एक दूसरे से अलग हुए थे।

लेकिन अभी एक महत्वपूर्ण खोज और बाक़ी थी। दक्षिण पूर्व एशिया के लोगों में से 6 प्रतिशत में डेनिसोवा मानव के डीएनए के अंश भी मिले हैं, जिससे पता चलता है कि इन दोनों समूहों के बीच भी सम्पर्क रहा होगा।

बहरहाल इन खोजों ने हमारे पूर्वजों के बारे में हमारी जानकारी को विकसित किया है। साथ ही इनसे हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता के विकास को समझने में भी मदद मिली है।

तीस साल पहले शुरू हुई विज्ञान की इस नई शाखा ने अब फल देने शुरू किये हैं, उम्मीद है कि आगे भी मानव अपने ज्ञान का दायरा बढ़ाता रहेगा।

इसके अलावा एक और बात। डॉ स्वांते पेबो 1982 के फिजियोलॉजी/मेडिसिन के नोबेल पुरस्कार विजेता सुनये बेर्गस्त्रोम के पुत्र हैं। सुनये बेर्गस्त्रोम को नोबेल पुरस्कार प्रोस्टाग्लैंडिन नामक एक बायोकेमिकल के ऊपर उनके काम के लिए मिला था।

परमपिता ईश्वर की अवधारण आदमी की बचकानी कल्पना का अलौकिकीकरण है।

–फ्रायड

दुनिया का सब से बडा खुलासा

ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं

स्विटजरलैंन्ड जेनेवा वैज्ञानिक शोध संस्था ने यह खुलासा किया है कि दुनिया किसी ईश्वर ने नहीं बनाई है, बल्कि कवार्क लेबोनेन नाम के कणों से निर्मित हुई है, जिसकी वजह से ब्रह्मांड यानि कि दुनिया निर्मित हुई है, दुनिया बनाने वालों इस कण की शोध को वैज्ञानिक दुनिया की सबसे बडी शोध बताते हैं ।

यह खोज 1980 से शुरू की थी जिसमें विश्व भर के वैज्ञानिकों की टीम कार्यरत थी, जिसमें भारत से बलदेव राज डावर नामक वैज्ञानिक भी शामिल थे और महा वैज्ञानिक हीग बोशन भी शामिल थे, उन्होंने यह परीक्षण दो बार किया और नतीजा एक जैसा ही आया और सिद्ध किया कि कवार्क लेबेनोन नाम के कणों ने पृथ्वी, जल, हवा, सूरज, चांद, पेड़ पौधे स्वयं निर्मित किए है, इसके पीछे कोई ईश्वर का करिश्मा या चमत्कार नहीं है ।

हालांकि उन्होंने यह भी कहा कि आज से 2500 साल पहले बुद्ध ने बताया था कि दुनिया स्वयं संचालित है, इसको चलाने वाला कोई नहीं है, लेकिन बुद्ध की बातों को दबाकर सभी धर्मों ने काल्पनिक ईश्वरीय स्वर्ग/नर्क की सत्ता को लोगों पर थोप दिया ।

वैज्ञानिक शोध के अनुसार पृथ्वी, हवा, जल और अग्नि का निर्माण कवार्क लेबेनोन नाम के कण से हुआ है,

जल = हाइड्रोजन + ऑक्सीजन,

वायु = ऑक्सीजन + नाइट्रोजन + अन्य

अग्नि = ऊष्मा,

पृथ्वी = कार्बन + फॉस्फोरस + कैलसियम + आयरन + अनेक तत्व ।

ईश्वर को धर्मों ने पैदा किया है, धर्म के धूर्त ठेकेदार काल्पनिक ईश्वर की दो काल्पनिक दुनिया स्वर्ग का लालच और नर्क का डर दिखाकर भोले-भाले लोगों को अपने-अपने ईश्वर की भक्ति के लिए मजबूर करते हैं. फिर ये ईश्वरीय दलाल पण्डित, मौलवी और पादरी बनकर अपने-अपने ईश्वरीय भक्तो का जमकर आर्थिक, शारीरिक और मानसिक शोषण करते हैं।

उपरोक्त वैज्ञानिक शोध से यह सिद्ध होता है कि ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है, दुनिया के सभी धर्म गुरूओं ने यही गलत प्रचार किया था कि सृष्टि की रचना उसके अपने मसीहा ने की थी हालांकि यह बात आज वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी सरासर गलत साबित हो चुकी है, लेकिन धार्मिक मान्यताओं का मैनजमेंट इतना जबरदस्त है कि हम चाहते हुए भी ईश्वरीय झूँठ की सत्ता से आजाद नहीं हो पा रहे हैं ।

अत: अपने दिमाग से काल्पनिक ईश्वरीय लालच और डर को बिल्कुल निकाल दीजिए और मानसिक रूप से स्वतंत्र हो जाइए, फिर सत्य, अहिंसा, प्रेम और समानता का जीवन जिएं और ऐसा जीवन जीने के लिए अन्य लोगों को भी प्रेरित करें, यही आनन्द का जीवन है, इसी में प्रकृति और मानवता का कल्याण निहित है ।

पृथ्वी पर तीन प्रकार का पॉल्यूशन होता है, सोइल पॉल्यूशन, वाटर पॉल्यूशन और एयर पॉल्यूशन, इनके अलावा एक और चौथा प्रकार का पॉल्यूशन होता है जो हमें दिखाई नही देता, वह पॉल्यूशन है, माइंड पॉल्यूशन जिसे धर्मों के धूर्त ठेकेदार फैलाते हैं । जो पहले तीन प्रकार के पॉल्यूशन का कारण है, माइंड पॉल्यूशन की वजह से ब्रह्मांड में सबसे सुंदर अनूठी 'हमारी पृथ्वी' आज नष्ट होने के कगार पर खड़ी हुई है।

यदि आपको अपनी 'सुंदर पृथ्वी' को बचाना है तो पण्डित, बाबा, मौलवी और पादरी की हर बात को तार्किक दृष्टिकोण से परखना होगा, काल्पनिक ईश्वरीय सत्ता के स्वर्ग-नर्क के लालच/डर को नकारना होगा तथा हर व्यक्ति को वैज्ञानिक दृष्टिकोण और अपने विवेक को अपनाना होगा ।....

ए.बी.पी. न्यूज रिपोर्ट

हम लड़ेंगे

भूख के विरुद्ध भात के लिए
रात के विरुद्ध भात के लिए
मेहनती गरीब के लिए
हम लड़ेंगे
हमने ली कसम
क्रांति के लिए उठे कदम
क्रांति के लिए जली मशाल

-शंकर शैलेन्द्र

कहानी

नया क़ानून

सआदत हसन मंटो

[यह एक आज़ादी के दीवाने मंगू कोचवान की कहानी का संक्षिप्त संस्करण है। मंगू पढ़ा-लिखा नहीं है फिर भी उसे दुनिया भर की जानकारी है, जिन्हें वह अपनी सवारियों से सुनकर मालूमात इक्ट्ठी करता है। एक दिन उसे पता चलता है कि भारत में नया क़ानून आने वाला है, जिससे भारत से अंग्रेज़ राज ख़त्म हो जाएगा। इसी ख़ुशी में वह क़ानून लागू होने वाली तारीख़ वाले दिन एक अंग्रेज़ के साथ झगड़ा करता है और जेल पहुँच जाता है।]

मंगू कोचवान अपने अड्डे में बहुत अकलमन्द आदमी समझा जाता था, हालाँकि उसकी तालीमी हैसियत सिफर के बराबर थी और उसने कभी स्कूल का मुंह भी नहीं देखा था। लेकिन इसके बावजूद उसे दुनिया भर की चीजों का इल्म था। अड्डे के वह तमाम कोचवान... उस्ताद मंगू के व्यापक ज्ञान से अच्छी तरह परिचित थे।



पिछले दिनों उस्ताद मंगू ने अपनी एक सवारी से स्पेन में जंग छिड़ जाने की अफवाह सुनी थी तो उसने ...गंभीर लहजे से भविष्यवाणी की थी - ''देख लेना चौधरी, थोड़े ही दिनों में स्पेन के अन्दर जंग छिड़ जायेगी।''

हुक्के का दौर चलते-चलते जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे की बात छिड़ी तो उस्ताद मंगू ने सर पर से खाकी पगड़ी उतारी और बगल में दाब कर बड़े चिंतित स्वर में कहा- ''यह आये दिन हिन्दुओं और मुसलमानों में चाकू-छूरियाँ चलते रहते हैं......''

उस्ताद मंगू को अंग्रेजों से बड़ी नफरत थी, इस नफरत का सबब तो वह यह बतलाया करता था कि वो उसके हिन्दुस्तान पर अपना सिक्का चलाते हैं और तरह-तरह के जुल्म ढाते हैं। मगर उसकी घृणा की सबसे बड़ी वजह यह थी कि छावनी के गोरे उसे बहुत सताया करते थे। वो उसके साथ कुछ ऐसा सुलूक करते थे गोया वह जलील कुत्ता हो। ...''आग लेने आये थे, अब घर के मालिक ही बन गये हैं। नाक में दम कर रखा है इन बन्दरों की औलादों ने, यूं रोब गाँठते हैं, जैसे हम उनके बाबा के नौकर हैं-।'' ''कोई नया क़ानून-वानून बने तो इन लोगों से निजात मिले। तेरी कसम जान में जान आ जाये।''

और जब एक रोज उस्ताद मंगू ने कचहरी से अपने ताँगे पर दो सवारियाँ लादीं और उनकी गुफ्तगू से उसे पता चला कि हिन्दुस्तान में नया संविधान लागू होने वाला है तो उसकी खुशी की हद न रही। दो मारवाड़ी... घर जाते हुए नये संविधान यानी इण्डिया ऐक्ट के बारे में आपस में बातें कर रहे थे। ''सुना है कि पहली अप्रैल से हिन्दुस्तान में नया क़ानून चलेगा -क्या हर चीज बदल जायेगी'' ''हर चीज तो नहीं बदलेगी मगर कहते हैं कि बहुत कुछ बदल जायेगा और हिन्दुस्तानियों को आज़ादी मिल जायेगी।''

शाम को जब वह अड्डे को लौटा तो... उसके सीने में एक अजीबोगरीब तूफान मचलने लगा। आज वह एक बड़ी खबर अपने दोस्तों को सुनाने वाला था-बहुत बड़ी खबर.... खासकर उस वक्त उसके दिल में ठंडक पहुंचती जब वह ख्याल करता कि गोरों-सफेद चूहों (वह उनको इसी नाम से याद करता था) की थूथनियाँ नये क़ानून के आते ही बिलों में हमेशा के लिए गायब हो जायेंगी।...

उस्ताद मंगू मौजूदा सोवियत व्यवस्था की साम्यवादी गतिविधियों के बारे में बहुत कुछ सुन चुका था और उसे वहाँ के नये क़ानून और दूसरी नई चीजें बहुत पंसद थीं। इसीलिए उसने ''रूस वाले बादशाह'' को इण्डिया ऐक्ट यानी नये संविधान के साथ मिला दिया और पहली अप्रैल को जो नये परिवर्तन होने वाले थे, उन्हें वह ''रूस वाले बादशाह'' के असर का नतीजा समझता था। कुछ अर्से से पेशावर और दूसरे शहरों में ''सुर्ख पोशों'' का आन्दोलन जारी था। ...इसके अलावा जब कभी वह किसी से सुनता कि फलाँ शहर में इतने बम बनाने वाले पकड़े गये हैं, या फलाँ जगह इतने लोगों पर बगावत के आरोप में मुकदमा चलाया गया है तो इन तमाम घटनाओं को नये क़ानून की पूर्वपीठिका समझता और दिल ही दिल में बहुत खुश होता था।

.....इस घटना के तीसरे दिन वह गवर्नमेंट कालेज के तीन छात्रों को अपने ताँगे में बिठाकर मिजंग जा रहा था कि उसने इन तीन लड़कों को आपस में बातें करते सुना, नये संविधान ने मेरी उम्मीदें बढ़ा दी हैं, अगर- साहब असेम्बली के मेम्बर हो गये तो किसी सरकारी आफिस में नौकरी जरूर

मिल जायेगी। .... ''वो बेकार ग्रेजुएट जो मारे-मारे फिर रहे हैं, उनमें कुछ तो कमी होगी।''

इस वार्तालाप ने उस्ताद मंगू के मन में नये क़ानून की अहमियत और भी बढ़ा दी और वह उसको ऐसी चीज समझने लगा जो बहुत चमकती हो....।

पहली अप्रैल तक उस्ताद मंगू ने नये क़ानून के ख़िलाफ़ और उसकी हिमायत में बहुत कुछ सुना मगर उसके बारे में जो तस्वीर वह अपने जेहन में बना चुका था, बदल न सका। वह समझता कि पहली अप्रैल को नये क़ानूनों के लागू होते ही सब गड़बड़ ठीक हो जायेगी और उसको विश्वास था कि उसकी आमद पर जो चीज़ें नजर आयेंगी उनसे आँखों को ठंडक जरूर पहुंचेगी।,

आखिरकार मार्च के इक्तीस दिन खत्म हो गये और अप्रैल के शुरू होने में रात के चन्द खामोश घंटे बाकी रह गये थे। मौसम ख़िलाफ़ेमामूल सर्द था और हवा में ताजगी थी। पहली अप्रैल को उस्ताद मंगू सुबह-सवेरे उठा और अस्तबल में जाकर घोड़े को ताँगे में जोता और बाहर निकल गया। उसकी तबियत आज गैरमामूली तौर पर खुशी व जोश से भरी हुई थी-वह नये क़ानून को देखने वाला था। ....उसकी आँखें आज खास तौर पर नया रंग देखना चाहती थीं, मगर सिवाये उस कलगी के जो रंग बिरंगे परों से बनी थीं और उसके घोड़े के सर पर जमी हुई थी और सब चीजें पुरानी नजर आती थीं।

अभी बहुत सवेरा है, दुकानें भी सब की सब बन्द हैं इस ख़्याल से उसे तसकीन थी। इसके अलावा वह यह भी सोचता था ''हाईकोर्ट में तो नौ बजे के बाद ही काम शुरू होता है। अब इससे पहले नये क़ानून का क्या नजर आयेगा।''

जब उसका ताँगा गवर्नमेंट कालेज के दरवाजे के करीब पहुंचा तो कालेज के घड़ियाल ने बड़े गर्व से नौ बजाये। जो छात्र कालेज के बड़े गेट से बाहर निकल रहे थे, साफ सुन्दर कपड़े पहने हुए थे, मगर उस्ताद मंगू को न जाने क्यों उनके कपड़े मैले-मैले से नजर आये। ...ताँगे को दायें मोड़कर वह थोड़ी देर के बाद फिर अनारकली में था। बाजार की आधी दुकानें खुल चुकी थीं और अब लोगों का आना-जाना भी बढ़ गया था। हलवाई की दुकान पर ग्राहकों की खूब भीड़ थी। ...मगर उस्ताद मंगू के लिए इन तमाम चीजों में कोई दिलचस्पी न थी-वह तो नये क़ानून को देखना चाहता था। ठीक उसी तरह जिस तरह वह अपने घोड़े को देख रहा था।

जब उस्ताद मंगू के घर में बच्चा पैदा होने वाला था तो उसने चार-पाँच महीने बड़ी व्याकुलता में गुजारे थे। उसको यकीन था कि बच्चा किसी न किसी दिन अवश्य पैदा होगा, मगर वह इंतजार की घड़ियाँ नहीं काट सकता था। वह चाहता था, अपने बच्चे को सिर्फ एक नजर देख ले, उसके बाद वह पैदा होता रहे।

...उस्ताद मंगू स्वभाव से बहुत जल्दबाज था। वह हर सबब की अमली तशकील देखने का न सिर्फ ख़्वाहिशमन्द था बल्कि जिज्ञासु था। उसकी बीवी गंगावती, उसकी इस किस्म की बेकरारी को देखकर आमतौर पर यह कहा करती थी ''अभी कुंआ खोदा नहीं गया और तुम प्यास से बेहाल हो रहे हो।''

कुछ भी हो मगर मंगू उस्ताद नये क़ानून की प्रतीक्षा में उतना व्याकुल नहीं था जितना कि उसे अपने स्वभाव के हिसाब से होना चाहिए था। ...अनारकली से निकलकर वह माल रोड की चमकीली सतह पर अपने ताँगे को आहिस्ता-आहिस्ता चला रहा था।....जिस तरह घोड़ा आहिस्ता-आहिस्ता कदम उठा रहा था, उसी तरह उस्ताद मंगू के जेहन में नये क़ानून के सम्बन्ध में नये अन्दाजे दाखिल हो रहे थे।

वह नये क़ानून की मौजूदगी में म्युनिस्पल कमेटी से ताँगों के नम्बर मिलने के तरीके पर विचार कर रहा था। नये क़ानून में कैसे मिलेंगे नम्बर-? वह सोच में डूबा हुआ था कि उसे यों महसूस हुआ जैसे उसे किसी सवारी ने आवाज दी है। पीछे पलट कर देखने से उसे सड़क के एक तरफ दूर बिजली के खंभे के पास एक गोरा खड़ा नजर आया, जो उसे हाथ से बुला रहा था।

जैसा कि बयान किया जा चुका है, उस्ताद मंगू को गोरों से सख़्त नफरत थी, जब उसने अपने ताजा ग्राहक को गोरे की शक्ल में देखा तो उसके दिल में नफरत के भाव भड़क उठे। पहले उसकी इच्छा हुई कि उसकी तरफ किंचित ध्यान न दे और उसको छोड़कर चला जाये मगर बाद में उसके मन में आया कि इनके पैसे छोड़ना भी तो नादानी है। कलगी पर जो मुफ्त में साढ़े चौदह आने खर्च कर दिये हैं, इनकी ही जेब से वसूल करना चाहिए। चलो चलते हैं-

खाली सड़क पर बड़ी सफाई से ताँगा मोड़कर उसने घोड़े को चाबुक दिखाया और एक क्षण में वह बिजली के खंभे के पास था। घोड़े की बागें खींच कर उसने ताँगा रोका और पिछली सीट पर बैठे-बैठे गोरे से पूछा।

''साहब बहादुर कहाँ जाना माँगटा है?''

इस सवाल में बेपनाह व्यंग्य था। ...उसका सारा

चेहरा हंस रहा था और अपने अन्दर उसने उस गोरे को छाती की आग में जलाकर भस्म कर डाला था।

....उस्ताद मंगू जो अपने दायें हाथ से लगाम के बल खोलकर ताँगे पर से नीचे उतरने वाला था, अपने सामने खड़े गोरे को यों देख रहा था गोया वह उसके वजूद के कण-कण को अपनी निगाहों से चबा रहा है और गोरा कुछ इस तरह अपनी पतलून पर से कुछ न दिख सकने वाली चीजें झाड़ रहा था, गोया वह उस्ताद मंगू के इस हमले से अपने वजूद के कुछ हिस्से सुरक्षित रखने की कोशिश कर रहा है।

गोरे ने सिगरेट का धुंआ निगलते हुए कहां- ''जाना माँगटा या फिर गड़बड़ करेगा?''

''वही है'' उस्ताद मंगू के जेहन में शब्द गूंजे और उसकी चौड़ी छाती के अन्दर नाचने लगे।

''वही है'' उसने शब्द अन्दर ही अन्दर दोहराये और साथ ही उसे पूरा यकीन हो गया कि वह गोरा जो उसके सामने खड़ा था वही है, जिससे पिछले बरस उसकी झड़प हुई थी और उस फालतू के झगड़े में, जिसका सबब गोरे के दिमाग में चढ़ी हुई शराब थी, उसे मजबूरन न चाहते हुए भी बहुत सी बातें सहनी पड़ी थी। उस्ताद मंगू ने गोरे का दिमाग दुरुस्त कर दिया होता बल्कि उसके पुर्जे उड़ा दिये होते मगर वह किसी खास कारण से खामोश हो गया था। उसको मालूम था कि इस किस्म के झगड़ों में अदालत का फैसला आम तौर पर कोचवानों के ख़िलाफ़ होता है।

उस्ताद मंगू ने पिछले बरस की लड़ाई और पहली अप्रैल के नये क़ानून पर गौर करते हुए गोरे से कहा, ''कहाँ जाना माँगटा है?''

गोरे ने जवाब दिया, ''हीरामंडी।''

''किराया पाँच रुपये होगा?'' उस्ताद मंगू की मूंछें थरथराईं।

यह सुनकर गोरा हैरान हो गया, वह चिल्लाया, ''पाँच रुपये, क्या तुम-?''

''हाँ, हाँ, पाँच रुपये'' यह कहते हुए उस्ताद मंगू का दाहिना बालों भरा हाथ भींच कर एक वजनी घूंसे की शक्ल इख़्तियार कर गया।

''क्यों-- जाते हो या बेकार बातें बनाओगे?''

उस्ताद मंगू का लहजा सख्त हो गया,

गोरा पिछले साल की घटना को याद करके उस्ताद मंगू की छाती की चौड़ाई नजरअन्दाज कर चुका था, वह सोच रहा था कि इसकी खोपड़ी लगता है फिर खुजला रही है। इस उत्साह बढ़ाने वाले विचार के तहत वह ताँगे की तरफ अकड़ कर बढ़ा और अपनी छड़ी से उस्ताद मंगू को ताँगे पर से नीचे उतरने का इशारा किया, पालिश की हुई बेंत की छड़ी उस्ताद मंगू की मोटी जाँघ के साथ दो-तीन मर्तबा टकराई। उसने खड़े-खड़े ऊपर से पस्त कद के गोरे को देखा, गोया वह अपनी दृष्टि के भार से ही उसे पीस डालना चाहता है। फिर उसका घूंसा कमान में से तीर की तरह ऊपर को उठा और पलक झपकते ही गोरे की ठुड्डी के नीचे जम गया। धक्का देकर उसने गोरे को परे हटाया और नीचे उतरकर उसे धड़ाधड़ पीटना शुरू कर दिया।

हैरान-चकित गोरे ने इधर-उधर सिमट कर उस्ताद मंगू के वजनी घूंसों से बचने की कोशिश की और जब देखा कि उस पर दीवानगी की हालत जारी है और उसकी आँखों से चिंगारियाँ बरस रही हैं, तो उसने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। इस चीख-ओ-पुकार ने उस्ताद मंगू की बाहों का काम भी तेज कर दिया, वह गोरे को जी भर के पीट रहा था और साथ-साथ कहता जाता था-

''पहली अप्रैल को भी वही अकड़ क्यूं- पहली अप्रैल को भी वहीं अकड़ क्यूं- अब हमारा राज है बच्चा।''

लोग जमा हो गये और पुलिस के दो सिपाहियों ने बड़ी मुश्किल से गोरे को उस्ताद मंगू की गिरफ्त से छुड़ाया, उस्ताद मंगू उन दो सिपाहियों के बीच खड़ा था। उसकी चौड़ी छाती फूली हुई साँस की वजह से ऊपर नीचे हो रही थी। मुंह से झाग बह रहा था और अपनी मुस्कुराती हुई आँखों से विस्मय में डूबे वहाँ जमा लोगों की तरफ देख कर वह हाँफती हुई आवाज में कह रहा था-

''वो दिन गुजर गए जब खलील खाँ फाख्ता उड़ाया करते थे, अब नया क़ानून है मियाँ-नया क़ानून।''

और बेचारा गोरा अपने बिगड़े चेहरे के साथ मूर्खों की तरह कभी उस्ताद मंगू की तरफ देखता था, कभी हुजूम की तरफ, उस्ताद मंगू को पुलिस के सिपाही थाने ले गये, रास्ते में और थाने के अन्दर कमरे में वह, नया क़ानून, नया क़ानून चिल्लाता रहा, मगर किसी ने एक न सुनी।

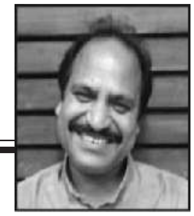
''नया क़ानून-नया क़ानून, कया बक रहे हो? क़ानून वही है पुराना।''

और उसको हवालात में बन्द कर दिया गया।

'तर्कशील पथ' पढ़ो, तर्कशील बनों।

सामाजिक विकास

– हिमांशु कुमार



पापा, ये मंदी क्या होती है ?

मेरी बेटी ने पूछा,

मैंने कहा, ''जब लोगों की क्रय शक्ति घटने की वजह से औद्योगिक उत्पादन घटने लगता है, और उद्योग लोगों को नौकरी से निकालने लगते हैं, जिसके कारण समाज में बेरोजगारी, गरीबी, भुखमरी, अपराध फैलने लगते हैं, उसे मंदी कहते हैं।''

''मुझे कुछ भी समझ में नहीं आया।'',

मेरी बेटी बोली।

''आप आसान भाषा में नहीं समझा सकते क्या?,'' पीछे से बेटी की माँ ने बेटी का समर्थन किया,

''अब मेरे पास मंदी क्या है? क्यों होती है ? इसके लक्षण और इसे ठीक करने के लिए क्या करना चाहिए ? इसे डी कोड करने के अलावा कोई चारा नहीं बचा था।''

तो जो मैंने अपनी बारहवीं में पढ़ने वाली बेटी को समझाया, वह आप के साथ साझा कर रहा हूँ–

पहले तो समझो कि अर्थ व्यवस्था का विकास कैसे होता है ?

पहले सब जंगल से खाना पीना इकट्ठा करते थे,

तब कोई उत्पादन नहीं करता था,

तब हम हन्टर्स और गैदेरर कहलाते थे।

फिर इंसान ने खेती करना शुरु किया,

तब इंसान ने अपने लिए उत्पादन शुरु किया,

खेती के साथ साथ इंसान ने कपड़े, जूते, तेल, गुड, खुरपी, फावड़ा बनाना भी शुरू किया।

धीरे-धीरे जब खेती लायक सभी जमीनों पर कब्जे हो गए,

उसके बाद जिनके पास खेती के लिए जमीन नहीं थी,

उन्होंने जमीन वालों के लिए जूते, तेल, गुड़, खुरपी, फावड़ा बनाने शुरू कर दिए।

बदले में जमीन वाले अपनी जमीन में पैदा होने वाली फसल इन जूते, तेल, गुड़, खुरपी, फावड़ा बनाने वालों को दे देते थे।

इसे वस्तु विनिमय कहते थें।

फिर पैसे का जन्म हुआ,

अब हर चीज की कीमत पैसे से नापी जाने लगी,

अब जूते के बदले में गेहूं देने के बदले,

जूते बनाने वाला पहले पैसे के बदले जूता बेचने लगा।

जूते वाला उस पैसे को गेहूं वाले के पास ले जाकर गेहूं खरीदने लगा।

अब उत्पादक आस पास के गांव के लोगों की जरूरत का समान बनाते थे।

अब जिसके पास ज्यादा जमीन थी,

वो खेती मज़दूरों से करवाने लगा,

मज़दूर उत्पादन तो ज्यादा पैसे का करते थे,

लेकिन मज़दूरी उनके उत्पादन से कम मिलती थी।

जमीन के मालिक के पास उत्पादन को बेच कर पैसा जमा होने लगा,

उस पैसे से उसने ज्यादा जमीन खरीदी और ज्यादा मज़दूर रखे,

धीरे धीरे कुछ लोगों के पास ज्यादा पैसा जमा हो गया,

उन लोगों ने उत्पादक से माल खरीद कर दूसरी को बेचना शुरु कर दिया।

यह लोग ''व्यापारी'' कहलाये।

अब उत्पादन गाँव की जरूरत के लिए नहीं बल्कि व्यापारी की मांग के हिसाब से होने लगा,

अब व्यापारी और अमीर किसानों की ज़मीन की रक्षा के लिए राजा और उसकी सेना का जन्म हुआ।

ध्यान देना राजा, सेना और पुलिस का जन्म अमीर जमीन मालिकों और व्यापारियों की रक्षा के लिए हुआ,

ना कि गरीब मज़दूरों को ज्यादा मजदूरी दिलाने या सबके जमीन का बराबर हिस्सेदार बनाने के लिए।

अब जहां राजा का महल था, वहां सेना रहती थी,

वहीं उसके आसपास अपने धन की सुरक्षा के लिए व्यापारी रहने लगे,

वहीं पर लोग अपना माल व्यापारियों को बेचने और अपनी जरूरत का सामान व्यापारियों से खरीदने के लिए आने लगे,

इस तरह ''नगर'' बसे। सारे गरीब मज़दूर भूमिहीन लोग राजा को स्वीकार करें और राजा द्वारा अमीरों की तरफदारी पर अंसतोष ना उठे,

इसके लिए ''पुरोहित वर्ग'' का उदय हुआ।

ब्राह्मण, पादरी, मुल्ला सबने राजा को 'ईश्वर' का भेजा हुआ प्रतिनिधि घोषित किया,

इसके बाद ''राजा के दरबार'' और ''धर्म'' स्थल दो ऐसे स्थान बन गये जिससे लोग डरने लगे।

अब राजा के दरबारी और उनके परिवार, सेना के अधिकारियों के परिवार, पुरोहित वर्ग के परिवारों, व्यापारियों और बड़े किसानों यानी जमींदारों के परिवार नगर में रहने लगे,

ये नया वर्ग पैदा हुआ जो शरीर से मेहनत नहीं करता था,

लेकिन इस वर्ग के पास ज्यादा पैसा था, इस वर्ग के पास सत्ता थी,

यानी अब समाज में दो राजनैतिक और आर्थिक वर्ग बन गये।

एक वो वर्ग जो बहुत मेहनत करता था लेकिन गरीब था,

दूसरा वह वर्ग जो मेहनत नहीं करता था लेकिन अमीर था,

राजा के दरबार में राजा की सहायता के आधार पर जीने वाले और धर्म के स्थलों पर रहने वाले पुरोहित वर्ग के लोगों ने शास्त्रीय कलाओं का विकास किया।

सभी शास्त्रीय संगीत, नृत्य साहित्य दरबारों की कृपा और धर्म स्थलों पर विकसित हुए।

दूसरी तरफ जनता मेहनत करते हुए जो गीत गाती थी,

या काम से थक कर रात को इकट्ठे होकर नाचते हुए जो नृत्य विकसित हुए,

उन्हें ''लोकगीत'' और '''लोक नृत्य'' कहा गया।

भारत मे एक खास बात हुई,

भारत में पुरोहित वर्ग ने मेहनतकश लोगों को ''शूद्र'' घोषित कर दिया,

और इन लोगों के लिए पुरोहितों की भाषा जानना व्यापार करना या सेना में भरती होना या हथियार रखना वर्जित कर दिया,

इस तरह भारत में जो नगरों में रहने वाला व्यापारी सैनिक और पुरोहित वर्ग था,

वह हमेशा के लिए सुरक्षित हो गया।

यह ''वर्ण व्यवस्था'' और ''जाति व्यवस्था'' भारत के अलावा और कहीं नहीं बनी,

तो भारत में जो अमीर और सत्ता धारी वर्ग था और नगरों में रहता था,

अब वह ''सवर्ण'' भी बन गया।

सेना के अधिकारी क्षत्रीय, व्यापारी, वैश्य और पुरोहित ब्राह्मण बन गये।

अब भारत में वर्ग और वर्ण एक ही बन गया।

यानी जो मेहनतकश है वह शूद्र है,

वह गरीब भी होगा सत्ताहीन भी होगा और सामाजिक तौर पर नीच भी माना जाएगा।

खैर अब भारत से निकलकर दुनिया की तरफ देखते हैं,

जो देश जातिवाद और धार्मिक पिछड़ेपन से मुक्त थे वे और ज्यादा अमीर बनने की यात्रा पर निकल पड़े,

यूरोप के देश फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल और इंग्लैण्ड ने दुनिया भर में अपने पाने के जहाज लेकर यात्रायें करीं और कई देशों पर कब्जा कर लिया।

इधर भारत में समुद्र की यात्रा करने पर ब्राहमण जाति से बाहर कर देते थे,

तो शुद्रों की तो हिम्मत और हैसियत ही नहीं थी कि वे समुद्र यात्रा करते,

क्षत्रीय और वैस्यों की भी हिम्मत नहीं थी कि वे बाहमणों से बगावत कर सके,

तो भारत कुएँ का मेंढ़क बना रहा,

और अपने शूद्रों की मेहनत पर पलता रहा।

भारत में बाहर में जो लोग आते और शासक बनते,

ब्राहमण उनकी चापलूसी में लग जाते।

ग्याहरवीं शताब्दी में ग्यासुद्दीन बलबन की संस्कृत में लिखी हुई स्तुति इसका प्रमाण है,

भारत में फ्रांसीसी पुर्तगाली और फिर अंग्रेज आये,

जातियों में बंटा हुआ समाज उनका मुकाबला नहीं कर पाया।

और भारत गुलाम हो गया।

उधर युरोप में भाप की शक्ति की खोज हुई,

और जो जमींदार थे उन्होंने भाप से चलने वाले इंजन लगा कर कपड़े बनाने शुरु किये,

अब अंग्रेज उद्योगपतियों को कारखाना चलाने के लिए कच्चे माल के रूप में कपास और नील की जरूरत थी,

और बने हुए कपड़े बेचने के लिए बाजार चाहिए था,

अंग्रेजों ने भारतीय लोगों को पुलिस में भरती किया और उनसे किसानों को पीट पीट कर कपास और नील उगाने के लिए मजबूर किया।

बहुत सारे भारतीय जुलाहों के अंगूठे कटवा दिए गये,

इसके अलावा भारत का हाथ का बने कपड़े के मुकाबले इंग्लैण्ड में मिल में बना कपड़ा पतला और चिकना होता था,

धीरे धीरे भारत का गाँव का कपड़ा उद्योग नष्ट हो गया,

भारत में बेरोजगारी और गरीबी फैल गई।

आजादी की लड़ाई के दौरान यह तय हुआ कि आजादी मिलने के बाद सबसे पहले भारत के गावों का विकास किया जाएगा।

जातिवाद के खिलाफ अभियान चलाया जाएगा,

और जो मेहनत करता है उसका फल उसे ही मिलेगा। लेकिन जो हुया, वह आपके सामने है!

नजरिया

क्या शैक्षणिक संस्थानों के पिछले दरवाज़े धार्मिक शिक्षा के लिए खोले जा रहे हैं?



सुभाष गाताडे

वर्तमान में जिस तरह से धार्मिक शिक्षा के लिए रास्ता सुगम किया जा रहा है, ऐसे में यह भी याद रखना चाहिए कि जैसे-जैसे यह शिक्षा आम होती जाएगी, वह वैज्ञानिक चिंतन के विकास को बाधित करेगी। नागरिकों को यह बताना जरूरी है कि धार्मिक चेतना और वैज्ञानिक चेतना समानांतर धाराएं हैं और आपस में नहीं मिलतीं।

राज्य निधि से पोषित किसी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी... संविधान की धारा 28 (1) की अगली कड़ी कहती हैं : राज्य में मान्यताप्राप्त या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षा संस्था में उपस्थित होने वाले किसी व्यक्ति को ऐसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए या ऐसी संस्था में या उससे संलग्न स्थान में की जाने वाली धार्मिक उपासना में उपस्थित होने के लिए तब तक बाध्य नहीं किया जाएगा जब तक कि उस व्यक्ति ने या यदि वह अवयस्क है तो उसके संरक्षक ने इसके लिए अपनी सहमति नहीं दी है।

'राज्य निधि से पोषित किसी शिक्षा संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाएगी।' संविधान की धारा 28 (1) इस बात का खुलेआम ऐलान करती है।

कहा जा सकता है कि 40 के दशक के उत्तरार्द्ध में जब दक्षिण एशिया का यह हिस्सा धार्मिक उन्माद से फैली हिंसा से उबरने की कोशिश में मुब्तिला था, उन दिनों स्वाधीन भारत के संविधान निर्माताओं ने जिस दूरंदेशी का परिचय दिया, उसका अंदाज़ा लगाना आज मुश्किल है। उस घड़ी में जब आपसी खुंरेजी उरूज पर थी, उनके सामने यह बिल्कुल साफ था कि अगर मुल्क को प्रगति की राह पर ले जाना है तो बेहतर है कि एक नयी जमीन तोड़ी जाए, स्कूल/शिक्षा संस्थान- जिनका बुनियादी मकसद बच्चों/विद्यार्थियों के दिमाग को खेलना है और उन्हें बेकार की चीज़ें ठूंसे जाने का गोदाम नहीं बनाना है- धार्मिक शिक्षा से दूर रखे जाएं।

यहां इस बात को रेखांकित करना आवश्यक है कि धार्मिक शिक्षा का यहां सीमित अर्थ है। वह इस बात को संप्रेषित करता है कि रस्मों रिवाजों की शिक्षा, पूजा के तरीके, आचार या रस्मों को शैक्षिक संस्थानों के परिसरों में अनुमति नहीं दी जा सकेगी जिन्हें राज्य से समूचे फंड मिलते हों। वैसे जैसे-जैसे आज़ादी के 75वीं सालगिरह को लेकर समारोहों, ऐलानों की बाढ़ आ गई है, हम खुद देख रहे हैं कि ब्रिटिशों की गुलामी के दौरान चले राजनीतिक-आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक मुक्ति संघषों में हासिल अहम सबकों को कितनी आसानी से भुलाया जा सकता है, किस तरह बेहद आसानी के साथ धार्मिक शिक्षा के लिए दरवाजे द्वारा संचालित शिक्षा संस्थानों में खोले जा सकते हैं।

इस मामले में सबसे ताज़ा मसला मध्य प्रदेश में सामने आया है।

गौरतलब है कि अपने लिए किसी असुविधा से बचने के लिए सरकार की तरफ से कहा गया है कि यह कदम किसी विशिष्ट धर्म के बारे में नहीं है और उसमें 'विज्ञान, संस्कृति, साहित्य और श्रृंगार' (भारतीय क्लासिकल कला रूपों में प्रेम और सौंदर्य की अवधारणा) पर भी बात होगी।

इस संदर्भ में एक बात ध्यान में रखे जाने की जरूरत है कि महामारी के दौरान लाई गई नई शिक्षा नीति ने ऐसे कदमों को उठाने को और सहूलियत प्रदान की है। क्योंकि उसके तहत प्रस्तुत 'भारतीय ज्ञान परंपरा' में ऐसे विषयों को शामिल करना आसान है।

राजस्थान की पूर्ववर्ती वसुंधरा राजे सरकार ने किस तरह अपने कार्यकाल में स्कूलों में विद्यार्थियों को नौतिक शिक्षा प्रदान करने के लिए 'संत', 'महात्माओं' को बुलाना तय किया था और किस तरह से उसे बुद्धिजीवियों तथा नागरिक समाज के कार्यकर्ताओं के प्रबल विरोध के चलते उस फैसले को वापस लेना पड़ा था, यह बात भी सर्वविदित है।

फिलवक्त हम भले ही इस बहस में न जाएं कि क्या धार्मिक किताबों से लोगों के नैतिक आचरण में विकास होता

है, लेकिन अगर हम बारीकी से देखें तो विभिन्न धर्मों की 'पवित्र किताबों' में हमें ऐसी तमाम बातें मिल सकती है, जो असमवेशी प्रतीत होती हों यहां तक कि समाज की सोपान क्रमनुमा संरचना की वैधता प्रदान करती हों या समुदाय विशेष के खिलाफ हिंसा का आह्वान करती दिखतीं हैं, और इस स्थिति में यह सवाल उठना लाजिमी हो जाता है कि ऐसे पाठों को शिक्षा के पाठ्यक्रम में क्यों स्थान दिया जाए।

हमें यह भी सोचना चाहिए कि पाठ्यक्रम में अगर किसी धर्मविशेष की बातें या उससे जुड़ी किताबें, ग्रंथ शामिल किए जाएं तो इसका बेहद विपरीत असर उन विद्यार्थियों पर पड़ सकता है जो अज्ञेयवादी हों या निरीश्वरवादी हों या दूसरे धर्म, संप्रदाय से ताल्लुक रखते हों।

इस संदर्भ में खुद नेशनल काउंसिल फॉर एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग का अध्ययन गौरतलब है, जिसके द्वारा तैयार किए गए मैन्युअल का फोक्स लगभग इसी बात पर है कि स्कूल असैंब्ली में होने वाली प्रार्थनाएं और इनकी दीवारों पर चस्पां किए गए देवी-देवताओं की तस्वीरें किस तरह अल्पसंख्यक समुदाय के बच्चों में पार्थक्य की भावना पैदा करते हैं।

उसने यह भी सुझाव दिया है कि स्कूलों के अंदर धार्मिक अल्पसंख्यकों से जुड़े त्यौहारों का प्रोत्साहित किया जाए, स्कूल के अंदर धार्मिक आयोजनों में ऐसे बच्चों के साथ अधिक संवेदनशीलता के साथ पेश आया जाए।

इसकी पड़ताल करते हुए हम संविधान निर्माण के दौरान चली बहसों पर भी गौर कर सकते हैं और देख सकते हैं कि स्वाधीनता के संग्राम की अगुआई करने वाले उन दूंरदेशी रहनुमाओं ने- जिनमें से अधिकतक आस्तिक ही थे - इस बात का विरोध किया था कि संविधान में 'ईश्वर के नाम' को अनिवार्य किया जाए।

'... 17 अक्तूबर 1949 को एचवी कामथ ने संविधान के प्राक्कथन में संशोधन के लिए एक प्रस्ताव पेश किया। उनका सुझाव था कि 'वी द पीपल ऑफ इंडिया' अर्थात 'हम भारत के लोग' के पहले 'ईश्वर के नाम' अर्थात 'ईन द नेम ऑफ गॉड' का उल्लेख किया जाए। मालूम हो कि संविधान सभा में इस मसले पर तीखी बहस चली, सदस्यों ने इस संशोधन के खिलाफ अपनी भावना प्रकट की और अंततः उसे खारिज किया। एक सदस्य पटटम ए. थाणु पिल्लेई ने कहा कि इसका मतलब आस्था को अनिवार्य किया जा रहा है। उन्होंने जोड़ा 'वह आस्था की स्वतंत्रता के बुनियादी अधिकार को प्रभावित करता है। संविधान के मुताबिक किसी व्यक्ति को ईश्वर पर आस्था रखने या नहीं रखने का अधिकार है।' एक अन्य सदस्य हृदयनाथ कुंजरू ने कहा कि प्राक्कथन में ईश्वर का नामोल्लेख करना एक तरह से 'एक संकीर्ण, संकुचित भावना को उजागर करता है जो संविधान की मूल स्पिरिट के प्रतिकूल है।'

यह भी विचारणीय है कि क्या नैतिक शिक्षा के नाम पर कोई शिक्षा संस्थान विद्यार्थियों को धार्मिक शिक्षा लेने से मजबूर कर सकता है, जैसी बात कुछ रूढ़िवादी कर सकते हैं कि हम फलां धार्मिक ग्रंथ को पढ़ाए जाने की हिमायत इसलिए कर रहे हैं ताकि बच्चे अधिक नैतिक बनें।

मसौदा कमेटी ने अपनी बात को स्पष्ट तौर पर रखते हुए यह कहा था कि विद्यार्थी पर ऐसा कोई भी दबाव बनाना संविधान की धारा 19 का उल्लंघन होगा क्योंकि 'सभी नागरिकों को बोलने की और अभिव्यक्ति की आज़ादी है।' इतना ही नहीं इस तरह का कोई भी आरोपण धारा 25 (1) का भी उल्लंघन होगा जिसके मुताबिक इस हिस्से की सार्वजनिक व्यवस्था, नैतिक और स्वास्थ्य के मसले को देखते हुए सभी लोगों को जमीर की पूरी आज़ादी होगी और धर्मविशेष को मुक्त रूप से प्रसारित करने, उस पर आचरण करने और उसका प्रचार प्रसार करने की भी स्वतंत्रता होगी। (Subject to public order, morality and health and to the other provisions of this Part, all person are equally entitled to freedom of conscience and the right freely to profess, practise, propagate religion.)

आज भले ही इस इतिहास को भुला दिया जा रहा हो लेकिन यह बात इतिहास में दर्ज है कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण (साइंटिफिक टेंपर) के बारे में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री रहे जवाहरलाल नेहरू बहुत पहले से सक्रिय थे। दरअसल संविधान के बुनियादी कर्तव्यों में वैज्ञानिक चिंतन को शामिल करने के पीछे उन्हीं का अहम योगदान था।

आजादी के संघर्ष के दौरान लिखी उनकी बहुचर्चित किताब 'भारत एक खोज' में उन्होंने कहा था: 'आज के समय में सभी देशों और लोगों के लिए विज्ञान को प्रयोग में लाना अनिवार्य और अपरिहार्य है। लेकिन एक चीज विज्ञान के प्रयोग में लाने से भी ज्यादा जरूरी है और वह है वैज्ञानिक विधि जो कि साहसिक है लेकिन बेहद **... शेष पृष्ठ 29 पर**

बिस्मिल और अशफाक: माफी नहीं, फांसी चुनी

– जनार्दन पांडेय

लखनऊ से लखनऊ–हरदोई हाईवे पर करीब 11 किलोमीटर चलने पर सड़क से एकदम सटा हुआ काकोरी शहीद स्मृति उद्यान दिखता है। गेट के बगल में लाल रंग से टिकटघर लिखा है, लेकिन टिकट खिड़की बंद है।

दाखिल होते ही मीनार दिखती है। उसी के ठीक नीचे अमर शहीद ज्योति है, लेकिन ये शायद बुझी ही रहती है। सामने ही उद्यान सहायक का कमरा है, लेकिन सहायक नहीं हैं। गेटकीपर कहते हैं, सहायक जी आज नहीं आए, लेकिन रूम में झूल रहे जाले कह देते हैं कि महीनों से ये दरवाजा भी नहीं खुला है।


राम प्रसाद बिस्मिल

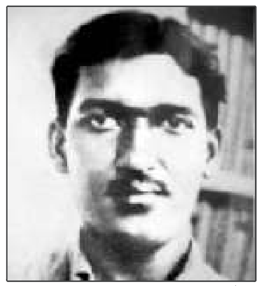
पार्क में 20–22 जवान लड़के–लड़कियां गोला बनाकर कुछ बातें कर रहे हैं। इन्हीं में से एक अमित कहते हैं, हम लोग NGO चलाते हैं। इस पार्क में कोई आता–जाता नहीं, इसलिए यहां मीटिंग करते हैं। यहां कुछ नहीं है, आप 3 किलोमीटर आगे बाज नगर जाइए, वहीं पर सब कुछ है।

बाज नगर, कस्बाई इलाका। मेन–रोड से 500 मीटर अंदर जाने पर काकोरी शहीद स्मारक मिलता है। गेट के भीतर जाते ही लाइब्रेरी नजर आती है। अंधेरा कमरा, 3–4 लोग टेबल पर दाल मखनी और तंदूरी रोटी खा रहे हैं। उसी के बगल में एक के ऊपर एक 20–25 किताबें रखी हैं। सभी महात्मा गांधी की आत्मकथा हैं। दीवारों पर रैक बने हैं। इसमें ककहरा और ए फॉर एपल सिखाने वाली 40–50 किताबें हैं। इनमें स्वतंत्रता सेनानियों पर 5 से 10 किताबें हैं। क्या यहां काकोरी से जुड़ी कोई किताब है?

मेन सीट पर बैठे खाना खा रहे शख्स जवाब देते हैं, बाहर सब पत्थरों पर लिखा है। बाकी मिश्रा जी से पूछिए। हम तो यहां कभी–कभी काम कराने आते हैं।

बाहर एक शिलालेख है। इस पर करीब 200 शब्दों में काकोरी के बारे में लिखा है कि करीब 8,000 रुपए लूटे गए थे। मामले में कुल 50 लोगों की गिरफ्तारियां हुई थीं। हालांकि इतिहास की किताबों और इस मामले में तब दर्ज हुई FIR की कॉपी के मुताबिक 4,601 रुपए 15 आना और छह पाई की लूट हुई थी। 10 लोग काकोरी ट्रेन एक्शन में शामिल थे, 40 लोगों को गिरफ्तार किया गया था।

पास ही में प्लास्टिक की लाल कुर्सियों पर कुछ स्थानीय लोग बैठे हैं। इन्हीं में राजकुमार मिश्रा भी हैं। सरकारी तनख्वाह पर हैं। काकोरी शहीद स्मारक और इसी के अंदर बने काकोरी शहीद मंदिर की देखरेख करते हैं। कहते हैं, मैं कुछ नहीं बताऊंगा। कुछ पूछना है तो लखनऊ में खत्री से मिलिए। आलमबाग में रहते हैं। मैं यहां शहीदों की सेवा करता हूं। शाम को अशफाक और 'पंडित' बिस्मिल की 'आरती' उतारता हूँ।


अशफाक अल्ला खां

गेट के बाईं ओर 100 मीटर दूर काकोरी शहीद सथल है। इसमें 15 क्रांतिकारियों की पेंटिंग नाम और सजा के साल के साथ लगी हैं। पांच प्रतिमाएं हैं। चार जिन्हें काकोरी मामले में फांसी हुई थी और एक चंद्रशेखर आजाद की।

मंदिर के दूसरे हिस्से में काकोरी संग्रहालय है। इस पर ताला लटका है। राजकुमार मिश्रा कहते हैं, इसमें कुछ नहीं है। सिर्फ 9 अगस्त और 19 दिसंबर को खोलते हैं। तब कुछ फोटो लगा देते हैं।

1923 में शचीन्द्रनाथ सान्याल ने HRA की स्थापना की थी। चंद्रशेखर आजाद और भगत सिंह भी इसी संगठन के सदस्य थे। इस पार्टी के लोग शुरुआत में क्रांति के कामों के लिए पैसा जुटाने के लिए डाके डालते थे। इन डकैतियों में धन कम मिलता था और निर्दोष व्यक्ति भी मारे जाते थे। इससे बदनामी भी होती थी और लोगों में पार्टी की चोर–डाकू जैसी छवि बनती थी।

जब HSRA बना तो पार्टी ने रणनीति बदली और सरकारी खजानों को लूटने की योजना बनाई। काकोरी ट्रेन की डकैती इसी दिशा में क्रांतिकारियों की पहली बड़ी कोशिश थी।

काकोरी शहीद स्थल के सामने 3 फीट ऊंचा और 7 फीट चौड़ा मिट्टी का टीला है। टिन की 2 फीट की पटरी पर लिखा है, 'कंकरहा बाबा' यानी वो जगह जहां काकोरी कांड

के वक्त क्रांतिकारियों ने मीटिंग की थी। एक बुजुर्ग टीले पर झाड़ू लगा रहे हैं। नाम है, मुन्नीलाल राजपूत लोधी।

वह कहते हैं, मेरी छह पीढ़ियां इस टीले की सेवा कर रही हैं। ये बाजनगर का 'देव-स्थान' है। काकोरी तो यहां बाद में हुआ। तब मेरे पापा यहां सेवा करने आते थे। वो बताते थे कि उस रोज कहा गया था कि यहां बारात आने वाली है।

स्मारक से 2 किलोमीटर दूर काकोरी स्टेशन है। पहुंचते ही आजादी के 75वें साल पर अमृत महोत्सव का पोस्टर दिखता है। स्टेशन के अंदर 3 और पोस्टर लगे हैं। दो प्लेटफॉर्म हैं। दोनों सुनसान। छठे कमरे में RPF के तीन जवान हैं।

सीनियर सो रहे हैं। जूनियर रजिस्टर पर कुछ काम कर रहे हैं। सीनियर अधिकारी जगते ही खफा हो जाते हैं। उन्होंने कहा, हम एक शब्द कुछ नहीं बोलेंगे। आप जाइए मेरठ से परमिशन लेकर आइए, फिर यहां कैमरा निकालिएगा।

स्टेशन के 200 मीटर दूर एक पान की गुमटी है। वहां 5 नई उम्र के लड़के हैं। यही कोई 25 से 28 साल के। कहते हैं, किताब में जो पढ़ा है वही पता है। यहां तो कुछ अलग से नहीं होता।

काकोरी घूमने पर 2 चीजें दिखती हैं

1. खस्ताहाल स्मारक
2. घटना के बारे में सही जानकारी न होना

जब आजाद-अशफाक के हथौड़ों के वार के सामने नहीं टिकी अंग्रेजों की तिजोरी

HRA के 10 क्रांतिकारियों ने मिलकर काकोरी ट्रेन एक्शन को अंजाम देने का प्लान बनाया था। 9 अगस्त की सुबह अशफाक, शचीन्द्रनाथ और राजेंद्र लाहिड़ी आठ डाउन पैसेंजर गाड़ी के दूसरे दर्जे के डिब्बे में सवार हो गए। उनका काम था कि तय जगह पर जंजीर खींचकर ट्रेन रोकी जाए। बाकी के 7 लोग रामप्रसाद बिस्मिल, केशव चक्रवर्ती, मुरारी लाल, मुकुन्दी लाल, बनवारी लाल, मन्मथ नाथ गुप्त और आजाद इसी ट्रेन की थर्ड क्लास के एक डब्बे में सवार थे।

ट्रेन के रुकने पर 2 लोगों को भागकर ड्राइवर को पकड़ना था, बाकी पहरेदारी और और लूट का काम करने वाले थे। जंजीर खींची गई और ट्रेन के गार्ड-ड्राइवर को बंदूक की नोक पर पेट के बल लिटा दिया गया। राम प्रसाद बिस्मिल ने जर्मन माउजर लहराते हुए कहा, सारे यात्री अपनी-अपनी जगह पर बैठे रहें। हम डकैत नहीं हैं। हम सिर्फ अंग्रेजों का खजाना लूटने आए हैं।

तिजोरी को ट्रेन से नीचे उतारा गया, लेकिन वह काफी भारी और मजबूत थी। अशफाक और आजाद ने हथौड़ों और छेनी की मदद से तिजोरी को खोल दिया। इसी दौरान ब्रिटिश सैनिकों की तरह पोशाक पहने एक सैय्यद साहब ट्रेन से उतर गए। क्रांतिकारियों की गोली से उनकी मौत हो गई।

तिजोरी में काफी नगद था, इसे साथ लाए कपड़े में गठरी की तरह बांध लिया गया। यहां से 9 क्रांतिकारी पैदल ही लखनऊ की तरफ निकल गए। आजाद ने पास ही के पार्क में रुकने का फैसला किया। सुबह सभी बड़े अखबारों में काकोरी के पास बड़ी डकैती हेडलाइन के साथ खबर छपी। अंग्रेज इससे काफी बौखला गए थे, गुप्तचर विभाग को पीछे लगा दिया गया।

गोविंद वल्लभ पंत की फीस ज्यादा थी, बीके चौधरी ने लड़ा केस

रश्मि कुमारी अपनी किताब 'काकोरी से पहले, काकोरी के बाद' में लिखती हैं कि अंग्रेजों ने 40 लोगों को गिरफ्तार किया था। जवाहर लाल नेहरू और गणेश शंकर विद्यार्थी जैसे लोग क्रांतिकारियों से मिलने पहुंचे। वह चाहते थे कि क्रांतिकारियों का केस उस वक्त के प्रसिद्ध वकील गोविंद वल्लभ पंत लड़ें, लेकिन फीस अधिक होने के चलते कलकत्ता के बीके चौधरी ने मुकदमा लड़ा।

रिंग थिएटर में 10 महीने चला मुकदमा, खर्च हुए 10 लाख

आज लखनऊ की जिस इमारत में प्रधान डाकघर है, उसी में आजादी से पहले रिंग थिएटर अदालत थी। काकोरी ट्रेन एक्शन का मुकदमा इसी अदालत में चला। 10 महीने चले इस मुकदमे में 10 लाख रुपए खर्च हुए। 6 अप्रैल 1927 को जज हेमिल्टन ने धारा 131A, 120B और 396 के तहत क्रांतिकारियों को सजा सुनाई। अशफाक, बिस्मिल, राजेंद्रनाथ और रोशन सिंह को फांसी की सजा सुनाई गई। शचीन्द्रनाथ सान्याल को कालेपानी की सजा और मन्मथनाथ गुप्त को उम्रकैद हुई।

मुकंदीलाल, गोविंदचरणकर, राजकुमार सिंह, रामकृष्ण खत्री को 10-10 साल और सुरेशचंद्र भट्टाचार्य और विष्णुशरण दुब्लिश को 7-7 साल और प्रेमकिशन खन्ना व रामदुलारे त्रिवेदी को 5-5 साल की सजा सुनाई गई। इस केस में कुंदन लाल और आजाद को पुलिस कभी नहीं पकड़ पाई।

अशफाक उल्ला खां की कहानी, अशफाक उल्ला खां की जुबानी

इसके बाद हम पहुंचे अशफाक उल्ला खां के घर शाहजहांपुर। यहां हमें अशफाक के पौत्र अशफाक उल्ला खां

मिले। हां, उनके पौत्र का भी यही नाम है। उनके इस नाम के पीछे भी रोचक कहानी है। वह बताते हैं- अशफाक को जब फांसी का हुक्म हो चुका था, तब उनके बड़े भाई रियासत उल्ला खां, चाचा रजीउल्ला खां और परिवार के लोग उनसे मिलने फैजाबाद जेल पहुंचे। अशफाक नहाकर लौटे तो उन्हें देखकर सब रोने लगे। उन्होंने कंधे पर रखे तौलिया से आंसू पोछा। उन्होंने कहा, मैं तो देश के लिए जा रहा हूं, लेकिन मेरे नाम से घर में किसी का नाम रख सकते हैं।

हमने पूछा, आपके पिताजी या फिर चाचाजी का नाम क्यों नहीं रखा गया? तब अशफाक ने बताया, उस वक्त अशफाक की मां यानी मेरी दादी जिंदा थीं। उनके सामने किसी का नाम रखा जाता तो उन्हें दुख होता, इसलिए जब हम पैदा हुए तो हमारा नाम उनके नाम से रखा गया। आज शहीदों के किसी कार्यक्रम में जाता हूं तो लोग आश्चर्य के साथ देखते हैं।

नाना थे अंग्रेज अफसर, फिर अशफाक क्रांतिकारी कैसे बने

अशफाक बताते हैं कि शाहजहांपुर के ज्यादातर पठान अंग्रेजी हुकूमत में अफसर थे। अशफाक के नाना भी वहीं थे। इसी वजह से राम प्रसाद बिस्मिल को भरोसा ही नहीं था कि अशफाक अंग्रेजों के खिलाफ लड़ाई में शामिल हो सकते हैं।

वे आगे बताते हैं, बिस्मिल अशफाक के बड़े भाई के क्लासमेट थे। देश को आजाद करवाने के मूवमेंट का पता चला तो अशफाक उनके साथ हो गए। यहीं शाहजहांपुर में आर्य समाज का मंदिर है, जहां बिस्मिल के पिता पुजारी थे। यहीं एक कमरे में क्रांतिकारी गुलामी की बेड़ियां तोड़ने के लिए प्लानिंग करते थे। अशफाक, बिस्मिल को 'राम' कहते थे। यह बात कई लोगों को पसंद नहीं थी।

माफी मांग लेते तो बच जाते अशफाक

भगत सिंह जब जेल में थे तो उन्होंने पंजाबी पत्रिका 'किरती' में काकोरी कांड को लेकर विस्तार से लिखा था। उन्होंने बताया, साथी क्रांतिकारियों को डर था कि अशफाक अंग्रेजी हुकूमत से माफी मांग लेंगे, क्योंकि उनके ऊपर परिवार का दबाव था। मजिस्ट्रेट तजस्सुक हुसैन को फैजाबाद भेजा गया। वह अशफाक को माफी मांगने के लिए कहते रहे, पर अशफाक नहीं माने। अशफाक के चेहरे पर फांसी का कोई भय नहीं था।

अशफाक ने फांसी से 3 दिन पहले यानी 16 दिसंबर को शचीन्द्रनाथ सान्याल की बहन को एक पत्र लिखा, उसमें उन्होंने कहा, बहन आप आने वाली थीं, लेकिन आ नहीं पाईं। आप आखिरी बार मिलिएगा जरूर, मैं लखनऊ आऊंगा।

19 की सुबह फांसी के बाद उनके ताबूत को लखनऊ लाया गया उस वक्त शचीन्द्रनाथ सान्याल की बहन उनसे मिली तो फूट-फूटकर रोने लगीं। इस तरह अशफाक ने मरने के बाद भी अपना वादा पूरा कर दिया।

... पृष्ठ 26 का शेष जरूरी भी है और जिससे वैज्ञानिक दृष्टिकोण पनपता है यानी सत्य की खोज और नया ज्ञान, बिना जांचे-परखे किसी भी चीज को न मानने की हिम्मत, नए प्रमाणों के आधार पर पुराने नतीजों में बदलाव करने की क्षमता, पहले से सोच लिए गए सिद्धांत की बजाय प्रेक्षित तथ्यों पर भरोसा करना, मस्तिष्क को एक अनुशासित दिशा में मोड़ना- यह सब नितांत आवश्यक है।

केवल इसलिए नहीं कि इससे विज्ञान का इस्तेमाल होने लगेगा, लेकिन स्वयं जीवन के लिए और इसकी बेशुमार उलझनों को सुलझाने के लिए भी... वैज्ञानिक दृष्टिकोण मानव को वह मार्ग दिखाता है, जिस पर उसे अपनी जीवन-यात्रा करनी चाहिए। यह दृष्टिकोण एक ऐसे व्यक्ति के लिए है, जो बंधन-मुक्त है, स्वतंत्र है।'

जैसे-जैसे हम देख रहे हैं कि रफ्ता-रफ्ता धार्मिक शिक्षा के लिए रास्ता सुगम किया जा रहा है। हमें यह भी याद रखना चाहिए और हमें सत्ताधारियों को ही नहीं आम जनता को भी बताना चाहिए कि संविधान की एक अहम धारा है जो नागरिकों के बुनियादी कर्तव्यों की बात करती हैं, जिसमें 'वैज्ञानिक चिंतन, मानवता और जांच पड़ताल की भावना और सुधार' की बात शामिल है। (धारा 51 ए बुनियादी कर्तव्यों के बारे में)

कहने का तात्पर्य यह कि जैसे-जैसे धार्मिक शिक्षा आम होती जाएगी, वह वैज्ञानिक चिंतन के विकास को बाधित करेगी, शायद उन्हें यह भी बताना होगा कि धार्मिक चेतना और वैज्ञानिक चेतना समानांतर धाराएं हैं और आपस में नहीं मिलतीं।

(सुभाष गाताडे वामपंथी एक्टिविस्ट, लेखक और अनुवादक है।) (सौजन्य: द वायर)

धर्म ने दर्शन और विज्ञान के विकास में अवरोधक की भूमिका निभाई। उस ने नरबलि, पशुबलि और सतीदाह की जिन्दा मौंतें दी है।

-गिरधारी लाल व्यास, बीकानेर

जलियांवाला बाग में प्रवेश पर टिकट की तैयारी क्यों?



- सुमीत सिंह अमृतसर

ऐतिहासिक जलियांवाला बाग ब्रिटिश हुकूमत के निर्दयतापूर्ण दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध हमारे अमर शहीदों के क्रान्तिकारी विद्रोह एवं बंधुत्व की महान विरासत है, जिसका भारतवर्ष के स्वतन्त्रता संग्राम में विशेष योगदान है। परन्तु गृह मंत्रालय एवं जलियांवाला बाग राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट द्वारा जलियांवाला बाग के सौंदर्यीकरण एवं नवीनीकरण के नाम पर इसके मौलिक स्वरूप, ऐतिहासिक तथ्यों एवं क्रान्तिकारी विरासत के साथ छेड़छाड़ की गई है। यह जालियांवाला बाग के शहीदों का अपमान है जिस से देश-विदेश के करोड़ों लोगों एवं प्रयटकों की भावनाओं को बहुत बड़ी ठेस पहुँच रही है।

यहां पर ही बस नहीं, अब तो केन्द्रीय सांस्कृतिक मंत्रालय द्वारा सरकारी-निजी कंपनी भागीदारी (P.P.P.) के तहत जलियांवाला बाग के लिये प्रवेश टिकट लगाने की तैयारी भी की जा रही है। इस के लिये बाग़ के मुख्य दरवाज़े के पास बने भवन संरचना में टिकट खिड़कियां तथा मशीनें लगा दी गई हैं। इस के साथ ही अन्दर जाने के लिये स्वचालित बैरियर भी लगाए गए हैं। मतलब साफ है कि जलियांवाला बाग़ के शहीदों को सिजदा करने के लिये प्रयटकों पर प्रवेश टिकट थोपे जाने की संभावना है। इससे से संबंधित देशभगत यादगार कमेटी जालंधर, तर्कशील सोसायटी पंजाब समेत जनपक्षीय सार्वजनिक संगठन और शहीदों के वारिस परिवारों के द्वारा केन्द्र सरकार की ऐसी जनविरोधी मानसिकता पर पहले भी कई बार चिंता का प्रकटावा किया जा चुका है परंतु जलियांवाला बाग राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट के दो सदस्यों श्वेत मलिक एवं तरलोचन सिंह (दोनों भूतपूर्व राज्यसभा सदस्य) द्वारा सार्वजनिक विरोध को रोकने के लिये प्रवेश टिकट नहीं लगाने का हर बार भरोसा देकर अखबारों में बयान जारी किया जा रहा है। इस के अलावा अमृतसर के तत्कालीन उपायुक्त ने भी जन प्रतिनिधियों के साथ एक मीटिंग में दाखिला टिकट न लगाये जाने का भरोसा दिया था, जिस की अवहेलना करने की कोशिश की जा रही है। अब एक बार फिर से भूतपूर्व राज्यसभा सदस्य एवं राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट के सदस्य तरलोचन सिंह ने कहा है कि दाखिला टिकट लगाएं जाने का अभी कोई फैसला नहीं किया गया है परन्तु उन्होंने यह भी माना कि टिकट खिड़कियों के इमारती ढांचे का निर्माण लोगों में दाखिला टिकट लगाये जाने का संदेह उत्पन्न करता है, जिसे हटाया जाना चाहिये।

बेहद शर्मनाक है कि जनपक्षीय संगठनों, शहीदों के परिवारों तथा देश विदेश से आने वाले पर्यटकों द्वारा दाखिला टिकट लगायें जाने का डटवां विरोध करने के बावजूद टिकट खिड़की के लिये बनाए गए इमारती ढांचे को वहां से हटाया नहीं गया है। सवाल यह है कि क्या केन्द्र एवं पंजाब की सरकारें संयुक्त तौर पर अमर शहीदों की धरोहर इस ऐतिहासिक यादगार के रख-रखाव का खर्च भी नहीं उठा सकतीं? यदि केन्द्र सरकार कोरोना काल के समय पर, जब कि बहुसंख्या में बीमार एवं जरुरतमंद लोगों को बेहतर चिकित्सा प्रणाली तथा अन्य बुनियादी सुविधाओं की ज़रूरत थी, इस ऐतिहासक बाग के सौंदर्यीकरण एवं नवीनीकरण (जिसकी कोई आवश्यकता नहीं थी) पर लगभग 20 करोड़ रूपयों की फिजूल खर्ची कर सकती है तो वह इसके रख-रखाव के लिये राष्ट्रीय ट्रस्ट को कुछ करोड़ रुपये सालाना फण्ड देने की जिम्मेदारी क्यों नहीं उठा सकती? दरअसल केन्द्र सरकार के पास धन राशि की नहीं बल्कि जनपक्षीय नीयत की कमी है। स्पष्ट है कि केन्द्र सरकार के द्वारा देश की आज़ादी के लिये अपने प्राण-न्यौछावर करने वाले हज़ारों अमर शहीदों एवं देश भक्तों से संबंधित धरोहरों एवं सांस्कृतिक संस्थानों का निजीकरण करना तथा उनको अपनी कमाई का साधन बनाना उसकी शहीदों के प्रति नकारात्मक, संवेदनहीन एवं जनविरोधी नीति और नीयत को स्पष्ट करता है। इस से संबंधित देश भगत यादगार कमेटी जालंधर, तर्कशील सोसायटी पंजाब तथा जनपक्षीय संगठनों द्वारा सौंदर्यीकरण के नाम पर जलियांवाला बाग के मौलिक स्वरूप एवं प्रमाणिक तथ्यों से छेड़छाड़ तथा संभावित दाखिला टिकट के विरुद्ध पिछले दो साल से रोष-प्रदर्शन किये जा रहे हैं। देश के प्रधानमंत्री को मांग पत्र देने के अलावा पिछले साल 23 अक्तूबर को जालियांवाला बाग के सामने एक विशाल प्रदर्शन भी किया गया था तथा चंडीगढ़ में 16 नवंबर को पंजाब के राज्यपाल को मांगपत्र भी दिया गया था, परन्तु इसके बावजूद केन्द्र सरकार, सांस्कृतिक मंत्रालय अथवा जलियांवाला

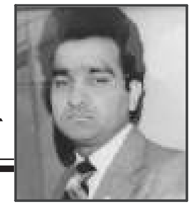
राष्ट्रीय स्मारक ट्रस्ट ने इस मुद्दे को सुलझाने के लिये कोई पहलकदमी करने की कोशिश नहीं की और इसके विपरीत बल्कि दाखिला टिकट लगाने की शंकाएं पैदा करके शहीद परिवारों एवं पर्यटकों की भावनाओं को ठेस पहुँचाई जा रही है।

अत्यंत आश्चर्यजनक एवं अफसोसनाक है कि जिस तंग गली में से जनरल डायर अपने हथियारबंद सिपाहियों के साथ बाग़ में दाखिल हुआ था, उसके खौफनाक दृष्य का पुरातन स्वरूप बदल कर उसके स्थान पर नाचते गाते हुए लोगों की मूर्तियों को दर्शाया गया है जैसे कि रौलट एकट एवं मार्शल ला का विरोध करने के लिये नहीं अपितु वे वैसाखी के मेले में जा रहे हों। जिस स्थान जनरल डायर ने मशीनगन से निहत्थे लोगों पर अंधाधुंध गोलियां चलवाई थी, उस स्थान पर लगे पिलर को हटा दिया गया। बाग की ज़मीन की सतह को इतना ऊँचा उठा दिया गया है कि मुख्य दीवार में लगी हुई गोलियों के निशान ही दिखाई नहीं पड़ते। शहीदी कुएं के पुरातन प्रारुप को खत्म करने के अलावा अमर ज्योति का स्थान भी बहुत दूर कर दिया गया है। शहीदी स्मारक के सामने भगवाकरण के एजेंडे के तहत तालाब में भाजपा के चुनाव चिन्ह कमल के फूल उगाये गये हैं। पर्यटकों के बाहर जाने का रास्ता बदल कर भीड़ भाड़ वाले बाजार की और कर दिया गया है ताकि बाग़ से बाहर निकलते ही लोगों की मानसिकता में से जलियांवाला बाग की खूनी घटना के चिन्ह उसी समय मिटाए जा सकें। जाहिर है कि यह सब इतिहास एवं धरोहरों के भगवाकरण के एजेंडे के अनुरूप किया जा रहा है। सर्वाधिक शर्मनाक पहलू यह है कि इस बर्बर नरसंहार को 103 वर्ष बीत जाने के बावजूद किसी भी सरकार द्वारा इस में शहीद हुए लोगों की सूची अभी तक जलियांवाला बाग में लगाने की कोशिश नहीं की गई। गौरतलब है कि जलियांवाला बाग के शहीदों को सिजदा करने के लिये आने वाले बहुसंख्या में पर्यटकों के द्वारा ऐसे कथित सौंदर्यीकरण एवं संभावित दाखिला टिकट पर आपत्ति प्रकट की जा रही है।

हकीकत यह है कि जलियांवाला बाग के मौलिक स्वरूप के साथ छेड़छाड़ करने के पश्चात् तंग गली के द्वारा बाग में प्रवेश करते समय अब हमारे दिलों–दिमाग पर ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ़ कोई विद्रोह, गुस्सा अथवा रोष प्रकट नहीं होता। स्पष्ट है कि वर्तमान भारत सरकार एवं जलियांवाला राष्ट्रीय यादगारी ट्रस्ट के द्वारा निर्दयी ब्रिटिश हुकूमत के द्वारा किए गये निर्मम नरसंहार तथा भारतीयों के सांगठनिक विद्रोह एवं शहादतों के इतिहास को सौंदर्यीकरण एवं नवीनीकरण की आड़ में लोगों के दिलो–दिमाग में से मिटाने तथा इसको एक सैरगाह बना देने की कोशिश की गई है ताकि देश के चेतन लोग और खासतौर पर नौजवान पीढ़ी इस से प्रेरणा ले कर समय की बर्बर सरकारों की साम्रज्यवाद पक्षीय नीतियों, अमानवीय एवं ब्रिटिश हुकूमत जैसे काले–कानूनों के विरोध में जागरूक हो कर अपने जनतान्त्रिक व नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए विद्रोह न कर सकें। इस तथ्य का सभी को भली–भांति पता है कि जनसंघ ने भारतवर्ष के स्वतन्त्रता आंदोलन में हिस्सा लेने के बजाय हमेशा ब्रिटिश सरकार की सहायता की थी तथा हिन्दू–मुस्लिम दोनों में सांप्रदायिक घृणा उत्पन्न कर के स्वतन्त्रता आंदोलन की पीठ में छुरा घौंपने का कार्य किया था। जनसंघ के वीर सावरकर ने भी अपने छह माफीनामों में ब्रिटिश सरकार को यह लिख कर दिया था कि यदि उसे रिहा कर दिया जाए तो वह और उसके साथी सदा के लिये अंग्रेज़ सरकार के वफादार बन कर रहेंगे तथा अंग्रेज़ों के विरुद्ध होने वाले किसी भी आंदोलन में भाग नहीं लेंगे। इस के बावजूद अब ऐसे लोग इतिहास को तोड़–मरोड़ कर सब से बड़े देशभक्त होने का दावा करते हैं। यदि देश के शासक हिन्दुत्व के एजेण्डे के अधीन किसी धार्मिक मुद्दे पर बहुसंख्यक लोगों की धार्मिक भावनाओं को ठोस पहुँचने से रोकने के लिए विशेष नीतियों तथा फैसले लागू कर सकते हैं, किसी विशेष धर्म के धार्मिक स्थानों के निर्माण के लिए सार्वजनिक धनराशि में से करोड़ों रुपये के फण्ड जारी कर सकते हैं, कुंभ के मेले पर करोड़ों रुपये खर्च किये जा सकते हैं और सरदार पटेल की मूर्ति पर 3000 करोड़ रुपयों की फिजूलखर्ची कर सकते हैं तो देश के अमर शहीदों की धरोहर को और उनको मान–सम्मान देने वाले करोड़ों लोगों की भावनाओं का ख्याल रखा जाना भी बेहद ज़रूरी है।

केन्द्र को यह कदापि नहीं भूलना चाहिए कि जलियांवाला बाग ब्रिटिश हुकूमत द्वारा शहीद किये गये हमारे सैंकड़ों अमर शहीदों की ऐतिहासिक यादगार और हमारी क्रांन्तिकारी विरासत है तथा यह कोई सैर–सपाटा अथवा मनोरंजन का स्थान नहीं है। इसको राजकीय आमदन का साधन नहीं बनाया जाना चाहिए। केवल जलियांवाला बाग ही नहीं बल्कि सारे देश के अंदर किसी भी धरोहर के रूप में स्थापित किसी भी ऐतिहासिक स्थान पर प्रवेश निकट नहीं लगनी चाहिए। हमारा मानना है कि केंद्र सरकार अथवा **... शेष पृष्ठ 33 पर**

डा. हरगोबिंद खुराना



डा. हरीश मल्होत्रा ब्रमिंघम

डा. हरगोबिंद खुराना का जन्म 09 जनवरी 1922 को गांव रायपुर तहसील कबीर वाला, जिला मुल्तान (वर्तमान में पाकिस्तान) में हुआ था। आप के पिता लाला गणपत राय पटवारी थे। उनके तीन अन्य भाई एवं एक बहन थी। घर में काफी गरीबी थी। फिर भी उनके पिता जी ने सभी बच्चों को पढ़ाया ही नहीं बल्कि गांव में एक कमरे का स्कूल भी खोला। बचपन में डा. खुराना को सुबह बहुत जल्दी उठना पड़ता ताकि घर में चूल्हा जलाने के लिए गांव में से किसी के घर से अंगारा मांग कर लाया जा सके। वह गांव में जाकर देखता कि किन के घर में से धुआं निकल रहा है तथा फिर उस घर से आग का एक अंगारा मांग कर ले आता। इसके अलावा वह प्राय: डाकघर के बाहर सीढ़ियों पर बैठ कर लोगों के पत्र लिख देता। हरगोबिंद की प्रारम्भिक शिक्षा रायपुर में हुई। माध्यमिक परीक्षा उन्होंने खानेवाल स्कूल से उर्त्तीण की तथा मैट्रिक की परीक्षा वर्ष 1938 में डी.ए.वी. हाई स्कूल मुल्तान से उत्तीर्ण की। इसके बाद डी.ए.वी. कालेज लाहौर में दाखिला ले लिया। एफ.एस.सी. उत्तीर्ण कर के 1940 में हरगोबिंद ने बी.एस.सी. आनर्स तथा 1944 में गवर्नमेंट कालेज लाहौर का विद्यार्थी बन कर एम.एस.सी. उत्तीर्ण की।



1945 में सरकार ने बहुत से प्रतिभाशाली एम.एस.सी. उत्तीर्ण विद्यार्थियों को विज्ञान की उच्च शिक्षा के लिए इंग्लैंड तथा अमेरिका में भेजा। हरगोबिंद भी उन में से एक था। उन्होंने 1948 में लिवरपूल यूनिवर्सिटी से पी.एच.डी. की डिग्री प्राप्त की। वर्ष 1948 में पी.एच.डी. करने के पश्चात् वे स्विटजरलैंड में चले गये। उन्होंने वहां फेडरल रिसर्च इंस्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलाज़ी में एक वर्ष लगाया। वे 1950 के आरम्भ में घर वापिस आ गये। दिल्ली विश्वविद्यालय के कैमिस्ट्री विभाग में डा. खुराना ने लेक्चरार बनने के लिए आवेदन किया, परन्तु उन का चुनाव नहीं हो पाया। निराश होकर वे इंग्लैड वापिस चले गये। उस समय कैंब्रिज यूनिवर्सिटी में डा. एलेग्जेंडर टॉड, जो कि केमिस्ट्री के नोबल पुरस्कार विजेता थे, आर्गेनिक केमिस्ट्री के मुखिया थे। उन्होंने डा. खुराना को फील्ड फेलोशिप ले दी और डा. खुराना ने उनके साथ मिलकर आर्गेनिक केमिस्ट्री में खोज कार्य शुरू कर दिया। वहां पर उन्होंने दो वर्ष तक अत्यन्त कठोर परिश्रम किया।

उनकी गरीबी का आलम यह था कि जब वे स्विटज़रलैंड में थे तो उनके वजीफे के पैसे खत्म हो गये तथा उन्हे मजबूरी में भारत आना पड़ा तथा जब उन्हें कैंब्रिज में नौकरी मिली तो उन के परिवार ने पैसे एकत्र कर के जहाज़ का टिकट खरीद दिया था। 1952 में डा. खुराना ने ESTHER ELIZABETH SIBLER के साथ शादी कर ली, जो कि एक स्विस महिला थी, जिनकी उनके साथ मुलाकात 1947 में पराग में हुई थी। उनकी पत्नी ने उनका बहुत हौसला बढ़ाया। यह उनकी पत्नी ही थी जिसने डा. खुराना को पश्चिम के शास्त्रीय संगीत की ओर उत्साहित किया। उनका घर पेंटिंग्ज़, साईंस की बहुत सी पुस्तके, आर्ट एवं फिलास्फी की पुस्तकों से भरा पड़ा था। डा. खुराना प्रकृति के प्रेमी थे, वे लंबी सैर प्राय: प्रकृति की गोद में एकान्त में किया करते थे ताकि विज्ञान की समस्याओं के बारे में गहराई के साथ चिंतन कर सकें। वे तैराकी के भी शौकीन थे। डा. खुराना व ESTHER के तीन बच्चे हुए। इन सभी बच्चों का जन्म कनाडा में हुआ था। डा. खुराना को अपनी मशहूरी बिल्कुल पसन्द नहीं थी, वे अतन्यनत नम्र स्वभाव के व्यक्ति थे।

1952 में उनको ब्रिटिश कोलंबिया में यूनिवर्सिटी के आर्गेनिक केमिस्ट्री विभाग का प्रमुख बना दिया गया। इस पदवी पर उन्होंने 9 वर्ष तक अपनी सारी शक्ति लगा कर रिसर्च की। Peptides, Proteins और Synthesis of Co-Engime-I पर खूब खोज की। इस कार्य एवं प्रसिद्धि के आधार पर वे 1960 में इंस्टीच्यूट ऑफ इंजायम रिसर्च यू.एस.ए. के डायरेक्टर बन गये। फिर वे विस्कोइन्सिन यूनिवर्सिटी में प्रोफैसर आफ लाईफ साईंसिज बन गये। अक्तूबर–1968 में

डा. हरगोबिंद खुराना को दो अन्य अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ संयुक्त फिजिओलॉजी एण्ड मेडिसन का नोबल पुरस्कार मिला।

डा. खुराना के एक अमेरिकी दोस्त ने लिखा है कि खुराना अत्यन्त विनम्र एवं शीतल स्वभाव का है, परन्तु जब भारत की कोई बात हो तो उसे क्रोध आ जाता है। उन का जन्म भारतवर्ष में हुआ था। उनके तीन भाई दिल्ली में रहते हैं। समस्त राष्ट्र खुशियां मना रहा था और देशवासी उन के गले में फूल मालाएँ पहनाने के लिये तैयार बैठे थे। वे उस समय भारतीय नागरिकता को त्याग कर अमेरिकी नागरिक बन गया था तथा फूल-मालाएं डलवाने के लिए भी उन्होंने भारत का भ्रमण नहीं किया। यह एक विचारणीय प्रश्न है।

जब से अलफ्रेड नोबल ने नोबल पुरस्कारों का सिलसिला शुरू किया है, सैंकड़ों ही पुरस्कार उच्च स्तर के वैज्ञानिकों, लेखकों, दार्शनिकों आदि ने जीते हैं। हमें अंग्रेज़ों के शासन के दौरान दो नोबल पुरस्कारों के विजेता होने का सम्मान प्राप्त हुआ था। प्रथम रवीन्द्र नाथ टैगोर की साहित्य में 'गीतांजलि' लिखने पर तथा दूसरा सी.वी. रमन को फिजिक्स में। जहां पर विज्ञान के ऊपर सत्ता का दखल होगा, वहां पर विज्ञान प्रफुल्लित नहीं हो सकता। राजकीय छाया के अधीन ज्ञान का पौधा मुर्झा जाता है। हमारे यहां दाखिलों, परीक्षाओं, नौकरियों, प्रोन्नतियों के समय पर सिफ़ारिशें लगती हैं। सिफारिशें करने वाले ये मंत्री, सांसद, राज्यपाल आदि सभी राजनीतिक नेता होते हैं। यदि विज्ञान को प्रफुल्लित होते हुए देखने की इच्छा हो तो यूनिवर्सिटियों को राजनीतिक अखाड़ों से दूर ले जाने की जरूरत है। डा. खुराना की खोज मानव शरीर के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। जिस प्रकार मौलिक्यूल के अंदर छोटे कण एटम होते हैं तथा एटम के अंदर छोटे कण इलेक्ट्रान एवं प्रोटोन होते हैं, इसी भांति कोशिकाओं के अंदर, जीवाणुओं में क्रोमोसोमज़ तथा क्रोमोसोमज़ में जीनज होते हैं। मेंडल ने खोज द्वारा यह बात सिद्ध की थी कि अनुवंशिक गुणों, अवगुणों को ज़ीन नियंत्रित करते हैं। 1910 में मार्गन ने यह सिद्ध किया कि ज़ीन क्रोमोसोमज़ में होते हैं। जब डा. खुराना 1950 में डा. टॉड के साथ कैंब्रिज में खोज कर रहे थे तब उन्होंने Complex Organic Compound, जिन्हें Nuecleatides कहा जाता है, बनाये थे। यह रिसर्च उनके कैंब्रिज को छोड़ देने के बाद भी जारी रही तथा वे इसी श्रेणी के Deoxyribo Nucleic Acid के निर्माण में सफल हुये। यह अत्यन्त पेचीदा यौगिक है। इस के नाम के तीनों भागों के प्रथम अक्षर लेकर इस का छोटा नाम D.N.A. रख दिया गया। ऐसा ही एक यौगिक, जो कि इस से कम पेचीदा है, Ribo Nucleic Acid है। इस का नाम R.N.A. रखा गया। डा. खुराना एवं उनके सहयोगी इस DNA तथा इससे अन्य कई प्रकार के Nucleotides बनो एवं उन की खोज पर लगे रहे। जब डा. खुराना के 1968 में दो अन्य अमेरिकी वैज्ञानिकों के साथ सांझा नोबल पुरस्कार मिला तो वह इन Nucleqatides की खोज के आधार पर था। डा. खुराना ने 1966 में अमेरिका की नागरिकता ले ली थी। डा. खुराना एक अत्यन्त विशाल हृदय वाले इन्सान थे तथा वे अपने विचारों को कैमिस्ट्री से इतर फिजिक्स एवं बायोलॉजी की प्रयोगशालाओं में भी जा कर परीक्षण करते रहते थें। उनका विश्वास था कि वे अन्य प्रयोगशालाओं से नये ढंग-तरीके खोज के लिए सीख सकते हैं। यह बात उस समये के विज्ञानियों के लिये बहुत विचित्र थी। बाद में अपने सेवा मुक्त होने तक, वे 2007 तक इस विज़न पर कार्य करते रहें। उन को अन्य भी बहुत से पुरस्कार प्राप्त हुए।

अंत में प्रयोगशाला में DNA बनाने में सफल हुए। डा. खुराना का 9 दिसंबर 2011 को U.S.A. में देहान्त हो गया था।

हिन्दी अनुवाद -बलवन्त सिंह

... पृष्ठ 31 का शेष सांस्कृतिक मंत्रालय द्वारा यहां पर किसी प्रकार की प्रवेश टिकट लगाने का जनविरोधी फैसला किया गया तो यह उन शहीदों का घोर अपमान होगा। ऐसा कोई भी जनविरोधी फैसला भविष्य में जनपक्षीय जन संगठनों द्वारा किए जाने वाले किसी बड़े जनतान्त्रिक जन विरोध को आमन्त्रण देने का कार्य करेगा।

इस लिये समस्त जनपक्षीय जन संगठनों के जायज़ विरोध तथा करोड़ों लोगों की भावनाओं को शान्त करने के लिये केन्द्र सरकार एवं जलियांवाला बाग़ राष्ट्रीय यादगार ट्रस्ट को जलियांवाला बाग़ में प्रवेश टिकट लगाये जाने की संभावित नीति को बिल्कुल रद्द करने, दाखिला टिकट के इमारती ढांचे एवं मशीनों को तुरन्त हटाने तथा ऐतिहासिक बाग के मौलिक स्वरूप और प्रमाणित तथ्यों को बहाल करने की नेक नीयति दिखलानी चाहिये। इस धरोहर के रख रखाव के लिये जरूरी फण्ड जारी किये जाने चाहियें। जलियांवाला बाग के अमर शहीदों के प्रति हमारा यही सच्चा सम्मान होगा।

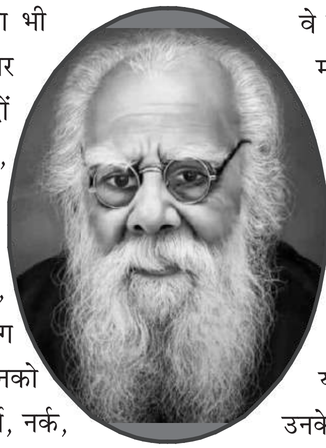
हिन्दी अनुवाद : बलवन्त सिंह लेक्चरार

ईश्वर और धर्म

पेरियार ई. वी. रामासामी

धर्म एक नियामकीय अनुशासन है। एक धार्मिक व्यक्ति चाहे जितना बुद्धिमान हो, उसे उस अनुशासन का पालन करना ही पड़ता है। लेकिन, उसके पास इसका और कोई उपयोग नहीं होता। धार्मिक नजरिये से देखें, तो धर्म के नाम पर हासिल क्या होता है? ईश्वर की अवधारणा, स्वर्ग, नर्क, धार्मिक व्यवस्था, धार्मिक व्यवस्था में उसके प्रवेश के पश्चात एक धार्मिक प्रभुत्व; शेष कुछ नहीं। ये सारी बातें सही नहीं है। न तो इनके पीछे सही तर्क हैं; न दर्शन। ये पूरी तरह कृत्रिम और प्राकृतिक मूल्यों के विरुद्ध हैं।

एक धार्मिक व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म का क्यों न हो, उसका ईश्वर चाहे कितना भी बड़ा क्यों ना हो; वह हमेशा एक कृत्रिम ईश्वर होता है। यहाँ प्राकृतिक, कृत्रिम आदि शब्दों का अर्थ समझा जाना चाहिए। भोजन करना, पेट की हलचल, देखना, सुनना, साँस लेना, बात करना, दर्द महसूस करना, भूख महसूस करना, सोना, जगना, यौन-सुख, खुशी, दर्द, सूरज, चाँद, प्रकाश, अंधेरा, प्रकृति के अंग है। ये सभी मनुष्य के लिए आम हैं और इनको कोई नकार नहीं सकता। ईश्वर, धर्म, स्वर्ग, नर्क, उपहार, दंड, सम्पत्ति, गौरव, शोषण, समर्पण, प्रार्थना आदि; ये सभी प्राकृतिक नहीं, बल्कि पूरी तरह कृत्रिम हैं।



प्राकृतिक और कृत्रिम चरित्र को समझने की क्षमता का सम्बन्ध सीधी धारणा और बुद्धि से है; बजाय कि आस्था के-जो इसके एकदम विपरीत है।

धार्मिक आस्था वाले किसी व्यक्ति की बात करें, तो उसका धर्म चाहे जो भी हो; लेकिन वह केवल आस्थावान ही होगा, तार्किक नहीं।

ईश्वर और धर्म केवल मूर्खों पर शासन कर सकते हैं। वे एक आस्तिक व्यक्ति को उन्मादी और पागल बना देते हैं। लेकिन, धर्म या देवता तार्किक व्यक्ति पर कोई प्रभाव नहीं छोड़ सकता।

मैं अक्सर ईश्वर और उससे जुड़े मसलों की तुलना प्याज से करता हूँ। प्याज में बीज नहीं होता। केवल छिलका ही छिलका निकलता है उसमें। यहाँ प्याज से तात्पर्य है निर्जीव, बीजरहित शरीर; जिसमें केवल छिलका रूपी त्वचा ही हो। पूरा छिलका उतारते जाइए और आखिर में आपको कुछ नहीं मिलता। क्योंकि, उसमें बीज तो होता ही नहीं। ईश्वर और धर्म भी बहुत हद तक ऐसे ही हैं। इन शब्दों का कोई प्राकृतिक अर्थ है ही नहीं। इनको अर्थ उन लोगों ने प्रदान किया है, जिन्होंने वास्तव में ये शब्द गढ़े हैं।

परन्तु, क्या कोई व्यक्ति कह सकता है कि सूर्य और चन्द्र आदि भी ईश्वर या धर्म की तरह हैं? नहीं! क्योंकि, वे वास्तविक हैं। यहाँ तक कि मूर्ख से मूर्ख और महान तर्कवादी तक कोई इस तथ्य से इन्कार नहीं करेगा। वे कभी ऐसा नहीं कहेंगे कि चूँकि वे मुझे नजर नहीं आते हैं; इसलिए मैं उनको स्वीकार नहीं करूँगा। वे कभी ऐसा नहीं कहेंगे। प्रकृति और सच का यही उदाहरण है, जो उसे बनावटीपन, कल्पना और मिथक से अलग करता है। इसके अलावा धार्मिक व्यक्तियों को यह सोचना चाहिए कि आखिर क्यों कुछ लोग उनके धर्म से इन्कार करते हैं? इसी तरह आस्तिकों को यह भी सोचना चाहिए कि आखिर क्यों कुछ लोग ईश्वर के आस्तित्व को नहीं मानते।

यह भी कि आखिर किस तरह ईश्वर में आस्था रखने वाले और धार्मिक लोग उन लोगों से श्रेष्ठ हैं, जो ईश्वर को या धर्म को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं? वे भला किस तरह समझदार या बुद्धिमान हैं? उनमें कौन-से अंग बेहतर हैं? इन बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। इस बात पर समुचित चिन्तन होना चाहिए कि जब मनुष्य के पास बेहतर बौद्धिकता हो, वह तार्किक नजरिया रखता हो, उसमें गहन विचार शक्ति हो तथा वह अनुभवजनित जीवन जी सकता हो, तो भला ईश्वर की आवश्यकता ही क्या है?

ईश्वर की अवधारणा मनुष्य रचित है। उसने ही

ईश्वर को सब कुछ रचने का श्रेय दिया है और यह कहा कि वही दुनिया का कारोबार चला रहा है। कहने का तात्पर्य यह कि आप अच्छा करें या बुरा आप मालिक नहीं हैं; आपको ऐसा करने को कहा गया है। आस्तिकों द्वारा लोगों को ईश्वर के काम के बारे में यही बताया जाता है। क्या यह विचार किसी के लिए किसी तरह भी मददगार है? बहुत सहज ढंग से इसका प्रयोग दूसरों को मशविरा देने में किया जा सकता है। लेकिन, क्या हम पर यकीन करते हुए कोई इसे अपने जीवन आचरण का निर्देशक बना सकता है?

जब तक लोग मूर्ख या अज्ञानी हैं; जब तक उनमें सोचने की क्षमता नहीं है; और वे बिना इसके ही रह लेते हैं, तब तक भगवान सर्वशक्तिमान और समस्त गतिविधियों पर नियंत्रण करने वाला बना रहेगा। लेकिन, आज एक विचार और बुद्धिमान व्यक्ति के लिए क्या इस बात को सही माना जा सकता है? क्या इसके लिए यह स्वीकार्य है?

इतना ही नहीं ईश्वर और धर्म के विचार हजारों साल पहले से अस्तित्व में है। क्या कोई इस बात से इन्कार कर सकता है कि ऐसे विचार या ऐसी कल्पनाओं में वर्ष बीतने के साथ धीरे-धीरे बदलाव आया है। इन सबका निर्माण मनुष्य ने किया है। अगर कहा जाए कि इनका निर्माण मनुष्यगत गुणों के साथ, लेकिन मनुष्य से परे क्षमताओं के साथ किया गया है; तो मैं कहूँगा कि यह धोखाधड़ी के सिवाय कुछ नहीं है। यह सच नहीं हो सकता है और न ही इसका बुद्धिमता से कोई लेना-देना है। इसमें किसी तरह की जिम्मेदारी भी नहीं नजर आती। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि मानवजाति का मौजूदा स्वभाव, उसका वैज्ञानिक विकास और उसके पूवार्नुमान आदि 1500, 2000, 5000 और 10,000 साल पहले की तुलना में कई गुना बेहतर हैं।

ईश्वर, धर्म और अतीत में उनको बनाने वाले लोग तथा सामान्य मानव स्वभाव से ऊपर के लोगों का यही कहना था कि आप गरीबों की मदद करें और आपको इसका लाभ 'स्वर्ग' में मिलेगा। परन्तु, आधुनिक विज्ञान की सामान्य वैज्ञानिक क्षमता कहती है कि आखिर दुनिया में गरीब लोग हों ही क्यों। ऐसी गरीबी होनी ही नहीं चाहिए, तथापि, अतीत में गरीबों की मौजूदगी की चाहे जो वजह रही हो; जिसने भी ऐसे हालत पैदा किए हों; लेकिन मौजूदा समाज में किसी को गरीब नहीं होना चाहिए। इन बातों का कोई क्या जवाब देगा? कोई भी दैवीय पुरुष इसे लेकर क्या रुख अपनाएगा? ऐसे में ईश्वर, धर्म, दैवीय व्यक्तित्व आदि कोई भी हों, अपने को बचाए रखने के लिए उन्हें विनम्र बनना होगा। मिसाल के तौर पर अगर लोग गौरव बोध से सामने आने लगें और कहने लगें कि हम भगवान के भक्त हैं; हम उसके संरक्षक हैं; तो यह निश्चित माना जा सकता है कि ऐसे लोग धर्म और ईश्वर और उसकी 'महानता' का खात्मा करने का ही काम करेंगे। ईश्वर, धर्म और दैवीय व्यक्तित्व- इन सबसे बुरा है भेदभाव करना, लोगों के बीच में अन्तर करना और इसकी वजह से लोगों को होने वाला कष्ट। दैवीय शक्ति के नाम पर धर्म लोगों में मूर्खता और अहंकार का संचार करता है। उनको बताया जाता है कि कोई उच्च शक्ति है, जो मनुष्य और उसकी शक्तियों से बेहतर है।

हालाँकि, ऐसी धार्मिक भावनाएँ 30 की उम्र से अधिक के वयस्क में भी नजर आती हैं। लेकिन, मेरा मानना है कि 24 या 30 से कम उम्र के लोगों में ऐसे मनोभाव नहीं होने चाहिए। केवल ईश्वर रहित भावना के साथ ही मनुष्य सबको समान समझ सकता है। लेकिन उसी स्थिति में उसमें यह ईमानदारी और साहस आता है कि वह अच्छी चीजों को सराह सके; जन-सेवा करने की क्षमता, हर किसी को समान समझने की क्षमता से पैदा होती है। मेरा विनम्र निष्कर्ष है कि अगर आज यहाँ ऐसी स्थिति नहीं है, तो ऐसा इसलिए, क्योंकि ईश्वर और धर्म की बातें, दैवीय गुण वाले मनुष्यों की बातें यहाँ मौजूद हैं। *(अंग्रेजी से अनुवाद: पूजा सिंह)*

आँधी के झूले पर झूलो
आग बबूला बन कर फूलो
कुरबानी करने को झूमो
लाल सवेरे का मुँह चुमो
ऐ इन्सानों, ओस न चाटो
अपने हाथों पर्बत काटो
जो रोटी का युद्ध करे गा
वह रोटी की आप वरेगा।

–मुक्तिबोध

मानसिक गुलामी की आधुनिक मिसाल है-सावरकर को बुलबुल पर बिठाना

- मुनेश त्यागी

हमारे देश और समाज में मनुष्य के दिमाग में अज्ञानता, अंधविश्वास, धर्मांधता और पाखंडों का कचरा हजारों साल से भरा गया है और मनुष्य को मानसिक रूप से दिवालिया और गुलाम बना दिया गया है। कर्नाटक में बीजेपी की सरकार द्वारा सावरकर को बुलबुल की सवारी करता हुआ दिखाया जा रहा है और 8वीं कक्षा के बच्चों को यही पढ़ाया जा रहा है।

इस प्रकार की अनंत मनगढ़ंत और कपोल कल्पित कथाएं हजारों साल से हमारे देश की करोड़ों जनता के दिमाग में ठूंस दी गई हैं और हकीकत यह है कि कुछ लोगों को छोड़कर, यहां की अधिकांश जनता कपोल कल्पित बातों और मनगढ़ंत कथाओं को सच माने बैठी हुई है। वह आज के वैज्ञानिक युग में भी हकीकत को, ज्ञान को, तर्क वितर्क को और वैज्ञानिक संस्कृति को अपनाने को तैयार नहीं है।

इसमें सबसे बड़ा खेल हमारे यहां का शासक वर्ग और सरकारें खेलती रही हैं। उन्होंने कभी भी जनता को बौद्धिक रूप से मुक्त करने की, उसे आजाद करने की, उसे जनता को अपने पैरों पर खड़ा होने की शिक्षा दी ही नहीं और वह आज भी यह चाहता है कि हमारे देश की जनता धर्मांधता, अज्ञानता, अंधविश्वास और पाखंडों के साम्राज्य में रची बसी रहे। वह अपने विवेक का, ज्ञान बुद्धि का, लॉजिक का इस्तेमाल ही ना करें।

इसी सोच के साथ कर्नाटक में भाजपा की सरकार ने, आठवीं कक्षा के लिए कन्नड़ भाषा में एक चैप्टर लागू किया है जिसमें उसने कहा है कि सावरकर अंडमान निकोबार की जेल से रोज निकलकर बुलबुल की पीठ पर बैठकर, भारत भ्रमण करने आया करता था। हमें जानकारी है कि जिस कोठरी में सावरकर बंद था, उस कमरे में कोई खिड़की, रोशनदान वगैरह नहीं था। उसमें कोई भी आ जा सकता नहीं था। हवा भी मुश्किल से आ सकती थी। वहां पर जेलकर्मियों का, पहरेदारों का 24 घंटे पहला रहता था, तो फिर सावरकर जेल से रोज कैसे निकल सकता था।

और दूसरा सवाल कि क्या कोई आदमी किसी 200 ग्राम की चिड़िया की पीठ पर बैठकर सवारी कर सकता है? क्या कोई चिड़िया इस दुनिया में ऐसी है जो किसी आदमी को रोज हजारों किलोमीटर दूर ले जा सके और रोज ला सके? यहीं पर तीसरा सवाल उठता है कि चलो एक बार को मान लिया कि वह बुलबुल की पीठ पर सवार होकर रोज भारत भूमि का भ्रमण करने आता था। मगर सावरकर यहां आकर करते क्या थे? वह कभी महात्मा गांधी से मिले? आजाद हिंद फौज के सिपाहियों से मिले? सुभाष चंद्र बोस से मिले? भगत सिंह और उसके दूसरे साथियों से मिले? जवाहरलाल नेहरू से मिले? तो आखिर भारत भूमि पर आकर क्या करते थे?

कर्नाटक में बीजेपी की सरकार वही हजारों साल पुराने अंधविश्वास, धर्मांधता, अज्ञानता और पाखंडों और बौद्धिक गुलामी को यहां की जनता और भारत की जनता के दिमाग में ठूंसना चाहती है। वह जनता को आज भी बौद्धिक रूप से गुलाम बनाए रखने की हरचंद कोशिश कर रही है उसने अपनी हरकतों से, ज्ञान विज्ञान के सूरज को ढक लिया है और भारत को पुनः अंधेरी सुरंग में धकेलने की तैयारी कर ली है। सावरकर को बुलबुल की पीठ पर बिठाकर, भारत भ्रमण की बात करना भी उसी जनविरोधी मानसिकता का परिचायक है।

आज भारत के धर्मनिरपेक्ष दलों की, ओर जनता की, वैज्ञानिकों की, किसानों मजदूरों की, नौजवानों की, बुद्धिजीवियों की, मीडिया कर्मियों की, वकीलों और जजों की यह सबसे बड़ी जिम्मेदारी है कि सांप्रदायिकता भारत में जो विवेक और बुद्धिहीनता का साम्राज्य कायम करना चाहती हैं, उसे बरकरार रखना चाहती हैं, इससे उन्हें लड़ना होगा, और जनता को इससे अवगत कराना होगा और उनकी इस ज्ञान विज्ञान विरोधी मुहिम को परास्त करना होगा।

०० सरफ़रोशी की तमन्ना ००

सरफ़रोशी की तमन्ना, अब हमारे दिल में है,
देखना है ज़ोर कितना बाजुए-कातिल में है।
आज फिर मक़तल में कालित कह रहा है बार-बार,
क्या तमन्ना-ए-शहादत भी किसी के दिल में है
वकत आने दे बता देंगे तुझे ए आसमाँ
हम अभी से क्या बतायें क्या हमारे दिल में है।

-राम प्रसाद बिस्मिल

माता अमरजीत कौर को समर्पित वैज्ञानिक चेतना सेमिनार

तर्कशील आगू सुमीत सिंह के माता अमरजीत कौर की प्रथम बरसी को समर्पित एक सेमिनार ''जनपक्षीय सामाजिक परिवर्तन एवं वैज्ञानिक चेतना की अहमियत'' के विषय पर तर्कशील सोसायटी पंजाब की अमृतसर इकाई एवं माझा जोन के सहयोग से 02 अक्तूबर 2022 को पंजाब नाट्य शाला-अमृतसर में करवाया गया। इस में प्रसिद्ध लेखक एवं मनोविज्ञानी डा. श्याम सुंदर दीप्ति, देश भगत यादगार कमेटी-जालन्धर के कार्यकारी सचिव तथा प्रसिद्ध लोकतान्त्रिक विद्वान डा. परमिंद्र सिंह ने मुख्य वक्ताओं के तौर पर भागीदारी की।

इस अवसर पर सेमिनार को संबोधित करते हुए डा. दीप्ति ने कहा कि मनुष्य को अपने आस-पास में घटित हो रही कुदरती एवं गैर कुदरती घटनाओं के वैज्ञानिक कारणों को समझने तथा उनका ठोस समाधान निकालने की हमेशा जिज्ञासा रही है, परन्तु हमारे समाज में जन विरोधी शासन प्रबन्ध तथा अवैज्ञानिक शिक्षा व्यवस्था के परिणाम स्वरूप वैज्ञानिक चेतना की कमी के कारण यहां पर अधिकांश लोगों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी रूढ़िवादी मानसिकता के गुलाम बना दिया गया है, जो कि सामाजिक परिवर्तन के रास्ते की प्रमुख रुकावट है। उन्होंने आगे कहा कि वर्तमान में सरकारों द्वारा भारतीय संविधान की धारा 51-ए (एच) तथा धारा 19 का खुलेआम उल्लंघन किया जा रहा है।

इस अवसर पर प्रसिद्ध लोकतान्त्रिक चिंतक डा. परमिन्द्र सिंह ने इस प्रकार के जनपक्षीय सम्मेलनों की जरूरत पर ज़ोर देते हुए कहा कि डार्विन के प्राकृतिक क्रमिक विकास के नियमों के अनुसार मनुष्य ने आदि काल से वर्तमान विज्ञान के युग तक लगातार भौतिक एवं बौद्धिक विकास किया है। मानव ने अपने संगठनात्मक संघर्षों के द्वारा आम जनता को दबाने के लिये किये जाते हैं बर्बर अत्याचारों एवं अन्याय तथा प्राकृतिक आपदाओं का साहस के साथ मुकाबला एवं डट कर विरोध किया है और ऐतिहासिक विजयों को प्राप्त किया है। उन्होंने अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए बताया कि समाज का आज तक का विकास एवं जनपक्षीय परिवर्तन केवल मनुष्य के वैज्ञानिक दृष्टिकोण, कठोर परिश्रम, दृढ़ साहस एवं संघर्षशील मानसिकता को अपनाने के कारण ही संभव हो सका है।

इस अवसर पर पंजाब नाट्यशाला के संस्थापक जतिन्द्र बराड़ तथा कर्मचारी नेता का. सुखमिन्द्र रंधावा ने कहा कि अपनों की स्मृति में पारम्परिक रूढ़िवादी कार्यक्रमों के स्थान पर इस प्रकार के चेतना सेमिनार करवाना ही जनपक्षीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रमाण है।

इस अवसर पर का. बलविन्द्र दुधाला, भारतीय किसान यूनियन एकता उगराहां के आगू गुरबचन सिंह एवं प्रसिद्ध फिल्म एवं रंगमंच कलाकार जसवन्त जस ने माता अमरजीत को स्मरण करते हुए कहा कि वर्तमान में फासीवादी सरकारों की जनविरोधी नीतियों ने हमारे भविष्य के लिए बड़ी चुनौतियां खड़ी कर दी हैं। इन का मुकाबला करने के लिए वैज्ञानिक चेतना और जन संघर्षों का मार्ग अपना कर ही एक मानव हितैशी समाज का निर्माण किया जा सकता है।

सेमिनार के अंत में तर्कशील आगू सुमीत सिंह ने विद्वान वक्ताओं तथा आए हुए महमानों रिश्तेदारों, पारिवारिक सदस्यों एवं तर्कशील सोसायटी पंजाब के आगुओं और अन्य सदस्यों का इस सेमिनार में पहुँचने पर धन्यवाद किया। साथ ही उन्होंने इस आयोजन में शामिल हुए सभी श्रोताओं को तर्कशल साहित्य का अध्ययन करने की अपील की।

तर्कशल सोसायटी के माझा जोन के वित विभाग के प्रमुख मुखत्यार गोपालपुरा ने मंच का बखूबी संचालन किया। इस के साथ ही तर्कशील आगुओं जसपाल बासरके, अश्विनी कुमार, शक्ति, नवरीत एवं नवजीत के द्वारा प्रबंधकीय दायित्व को सफलतापूर्वक निभाया गया। आयोजन की समाप्ति पर वहां पर आए हुए सभी महमानों को तर्कशील मैगज़ीन मुफ्त में बांटा गया।

- बलवन्त सिंह

धर्म के काल्पनिक स्वपनों से चिपके रहने से अच्छा है अपने अनुभव की सीमा में रहते हुए अपनी अज्ञानता स्वीकार कर लेना ।

- लुडविग बुचनर

मार्क्स की 'पूँजी' पर आधारित पाठ

बच्चों के लिए अर्थशास्त्र



- रंगनायकम्मा

प्रस्तावना

मैंने यह पुस्तक सिर्फ बच्चों के लिए लिखना शुरू किया था कक्षा 7, 8 से 10 तक के बच्चों के लिए।

छोटी उम्र से ही बच्चों की जरूरत होती है खेल-कूद, गीत, कहानियाँ और भी बहुत सारी चीजें। कहानियों में कल्पना की उड़ाने ओर अन्धविश्वास रचा हों, तो भी साथ ही साथ बच्चों को कोई वैज्ञानिक बातें भी मिल जानी चाहिए। विज्ञान वह ज्ञान है जो कुदरत के बारे में, जिसमें हमारा अस्तित्व है, और समाज के बारे में, जिसमें हम जीते हैं, सच्ची-सच्ची बातों का प्रमाण सहित खुलासा करता हो।

बच्चे तो मासूम होते हैं। घर में बड़े-बुजुर्ग जो उन्हें बताते हैं और जो स्कूल में बताया जाता है, उसी को वे सीखते हैं और उसी पर भरोसा कर लेते हैं। बड़े लोग उन्हें वही बताते हैं जो उन्होंने अपने बड़ों से सीखा होता है। वे बच्चों को वही सिखाते हैं जो उन्हें सिखाया गया हो। बच्चे हों या बड़े, सोचना तभी शुरू करते हैं जब वैज्ञानिक ज्ञान हासिल हो।

कुदरत से वास्ता रखने वाले विज्ञान के सारे पहलू सीखने की इतनी जरूरत नहीं। चिकित्सा-विज्ञान को हर कोई पूरी तरह सीख ले यह जरूरी नहीं। शारीरिक शुचिता की नित्य-क्रिया के रूप में रोज-रोज लागू की जाने वाली बुनियादी बातें मालूम हो, तो काफी हो जाता है। जब कोई तकलीफ हो, तो डॉक्टर हमारी बीमारियों की देखरेख कर लेते हैं। हर किसी को उतने मेडिकल ज्ञान की जरूरत नहीं होती जितना डॉक्टरों को। यही बात बाकी सारे प्रकृति -विज्ञानों पर भी लागू होती है।

लेकिन यह बात उस विज्ञान पर लागू नहीं होती जो हमें अपने इस समाज के बारे में शिक्षित करता हो। हम इनसान हैं, पशु नहीं। पशु जन्म लेते हैं, तो एक दिन जिस तरह जन्म लिया उसी तरह मर जाते हैं। उन्हें किसी तरह के विज्ञान या ज्ञान की जरूरत नहीं होती। मगर इनसानों को इनसानी रिश्तों के बारे में जानने की जरूरत है। अर्थशास्त्र इनसानों के बीच के रिश्तों और उनके जीने के तरीकों को सिखाता है। यह वह विज्ञान है जो कल, आज और कल के जीवन की तस्वीर पेश करता है। यह ज्ञान हर व्यक्ति के पास होना चाहिए।

बच्चों के लिए एक मासिक पत्रिका होती थी, 'नानी' (संपादक : एन.के.बाबू)। मूल रूप में मैने ये पाठ उसी पत्रिका के लिए लिखना शुरु किये थे। मेरी योजना उस वक्त सिर्फ 'पैसा क्या होता है' तक ही लिखने की थी। उस पत्रिका में इस पुस्तक के सिर्फ पहले आठ पाठ ही आ पाये। फिर वह पत्रिका अपनी आर्थिक समस्याओं के चलते बन्द हो गयी। लेकिन मैंने यह पुस्तक पूरी कर डाली ताकि बच्चों को दूसरे पाठ भी दे सकूँ।

लेकिन बच्चों के लिए इतनी बड़ी किताब? इस पुस्तक का आखिरी पाठ क्या बच्चे समझ पायेंगे ? ऐसी शंकाओं से मैं खुद ही कभी-कभी घिर जाती थी। मुझे पाठ ज्यादा विस्तार से लिखने पड़ते थे, यह सोचकर कि यह पुस्तक बच्चों के लिए है। पुस्तक बच्चों के लिए होने के कारण अक्षर थोड़े बड़े छपवाये गये हैं। जगह-जगह चित्र भी हैं। 'सवाल और जवाब' भी। अन्त के कुछ पाठों में अखबार की करतरनें भी दी गयी है। इन्हीं कारणों से किताब का आकार बड़ा हो गया है। पर पाठ छोटे-छोटे हैं। अगर पाठ इतने आकार के नहीं होते, तो विज्ञान की न्यूनतम समझ हासिल करना मुमकिन नहीं होता।

बच्चों में कई स्तर होते हैं। उन बच्चों को कोई समस्या नहीं होगी जिन्हें पढ़ने की आदत हो और जो सीखने में दिलचस्पी रखते हों। उन चीजों को समझने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए जिनमें तर्क की बात हो। पाठों के शीर्षक, खास-खास शब्द और पाठों में बताये गये पात्रों के नाम बच्चों के कानों और मानस-पटल पर पड़ें, तो काफी होगा। बच्चे बस इतना ही जान लें कि ऐसा एक विज्ञान होता है, तो भी काफी होगा। मगर एक बार में समझ में न आये, तो वे पाठों का फिर से पढ़ सकते हैं। सब कुछ उनकी रूचि पर निर्भर करता है। जहाँ-जहाँ बच्चों को जरूरत पड़े, अगर बड़े थोड़ी मदद कर दें, फिर तों समस्या कुछ भी नहीं होगी।

लेकिन जब किसी अपरिचित विज्ञान को सीखने की बात हो, तो बालिग लोग भी बच्चों की तरह होते हैं। बालिगों में भी 99 प्रतिशत लोग अपने समाज के बारे में शिक्षा देने वाले इस विज्ञान की कोई जानकारी नहीं रखते। मार्क्स की 'पूँजी' पढ़िए, जानकारी मिल जायेगी। लेकिन उससे शुरुआत करना नामुमकिन-सा होता है। इसीलिए मैंने इससे पहले 'मार्क्स की पूँजी' का परिचय लिखा। बालिगो को उस किताब को पढ़ने में कोई खास दिक्कत नहीं होगी। (लेखिका की 'मार्क्स की पूँजी' का परिचय अभी तेलुगू और अंग्रेजी में ही उपलब्ध है-

अनुवादक)

उन किताबों को पढ़ने के लिए 'बच्चों के लिए अर्थशास्त्र' एक प्रकार से प्राइमर (प्राथमिकी) का काम कर सकती है। इसे लिखते वक्त वे बालिग भी मेरे मन में थे जो मार्क्स की 'पूँजी' से खौफजदा हों या अपनी काहिली के कारण बचते हों। बालिग व्यक्तियों को भी बच्चों की किताबें पढ़नी चाहिए, और उनके सीखना चाहिए। फिर बच्चों को सिखा देना चाहिए।

1. 'पैसा' क्या होता है?

प्यारे बच्चो!

लड़के और लड़कियों!

क्या आप जानती हैं कि 'पैसा' क्या होता है ? आइए, इसी बात को जान लेते हैं! जो हम पैसों के रूप में देखते हैं वे होते हैं छोटे गोल-गोल सिक्के या कागज के टुकड़े। किसी को हम पैसे देते हैं और खरीदते हैं पेंसिल, कलम, बिस्कुट, किताबें और बहुत सारी चीजें। पैसे देने पर तो हमें कुछ भी मिल सकता है। है न? पर 'पैसों के बदले हमें चीजें क्यों मिलती हैं ? क्या होता है यह पैसा?'' ऐसे प्रश्न क्या कभी आपके मन में उठे हैं? शायद नहीं।

ऐसे प्रश्न तो बड़ों के मन में भी नहीं उठते। फिर बच्चों में कैसे उठेंगे ? आप घर में अपने बड़ों से या स्कूल में अपनी अध्यापिकाओं से पूछ कर देखिए, ''क्या होता है पैसा?'' और सुनिए, वे क्या कहती हैं!

कहेंगी, ''पैसा वह है जिससे हम चीजें खरीदते हैं। पैसा वह है जो चीजों को खरीदने के काम आता हो।'' वे आपको इतना ही बता पायेंगी। ऐसे जवाबों से क्या आप 'पैसा क्या होता है' यह समझ पायेंगे? नहीं, इतने ही जवाब काफी नहीं।

आप फिर से पूछिए ''जब हम पैसे देते हैं, तो हमें कोई भी चीज क्यों मिल जाती है ? पैसा एक छोटा-सा सिक्का या छोटा-सा कागज का टुकड़ा ही तो है। है न ? फिर उसमें ऐसा क्या होता है ? क्या इस कागज के टुकड़े को दिये बगैर कोई भी चीज नहीं मिल सकती ? उस दिन मौसी हमारे लिए मिठाई ले आयी थी। वह तो हमने पैसे दिये बगैर ही ले ली थी न ? पैसों से चीजें खरीद पाने के लिए हमें पैसे कैसे मिलते हैं ? पैसे किसी को भी कैसे मिलते हैं ? क्यों मिलते हैं ? कहाँ से मिलते हैं ?'' इस तरह के और भी सवाल पूछिए।

एक भी सवाल का जवाब न तो माँ दे पाती हैं, न ही आपके पिता। अध्यापिका भी नहीं। वे इसलिए जवाब नहीं दे पाते कि जवाब जानते ही नहीं हैं। अगर जानते होते, तो क्या छुपाते ? नहीं न ? उन्हें मालूम नहीं होता, इसीलिए नहीं बता पाते। मगर इस बात को वह स्वीकारते नहीं हैं। ''मुझे मालूम नहीं है' ऐसा वे कहते नहीं। एक ही बात दोहराते हैं जैसे सब कुछ जानते ही हों। ''पैसे न दें, तो कोई चीज कैसे मिल सकती है? मुफ्त में मिल जायेगी ? यह भी कोई सवाल है'' अपनी वाक्-पटुता से वे आपके सवालों को दबा देते हैं।

बच्चे ऐसे सवाल पूछें, तो बड़ो को आश्चर्य होना चाहिए। ''सचमुच! इतने सालों से हमने नहीं सोचा! पैसा सिर्फ एक छोटा-सा टुकड़ा ही तो है। फिर इसे देने पर हमें कोई चीज क्यों मिलनी चाहिए?'' इस तरह रह-रह कर बड़ों को भी आश्चर्य होना चाहिए। उनमें भी यह जानने की जिज्ञासा होनी चाहिए कि पैसा क्या होता है ?

अचम्भों से उनका कोई लेना देना नहीं। आलस्य है पूरा! इतने आलसी कि अचम्भित भी नहीं होते! इतने आलसी कि सोचते भी नहीं! इतने आलसी कि दिमाग भी नहीं चलाते!

दरअसल पैसों के बारे में सोचने के लिए हमारे पास नया कुछ भी नहीं है। इस विषय पर लोग पहले ही सारा सोच-विचार कर चुके हैं। उन्हीं बातों का जान लेना हमारे लिए काफी होगा! हम यदि यह जानना चाहते हों कि पैसा क्या होता है, तो हमें यह जानना होगा कि कोई चीज खरीद पाने का गुण पैसों में आया कैसे ?

लेकिन इससे पहले हमारे लिए यह जानना जरूरी होगा कि कोई 'चीज' क्या होती है ? पैसा भी तो एक 'चीज' है। इसीलिए पहले हमें 'चीज' के बारे में जानना होगा। पैसों के बारे में हमारी समझ तभी बन पायेगी जब हम कई और पाठ पढ़ लेंगे।

सवाल

हर पाठ के अन्त में 'सवाल और जवाब' होंगे। मगर इस पहले पाठ में आप सिर्फ सवाल ही पायेंगे। कोई जवाब नहीं। इन सवालों का जवाब खुद दे दीजिए! थोड़ा सोचने की जरूरत होगी। फिर जवाब आ जायेगा।

1. 'पैसा क्या होता है?' यह सवाल क्या कभी आपके मन में उठा? यदि उठा हो, तो आपने किसी के सामने कभी रखा ?
2. इस पाठ को पढ़ने के दौरान क्या आपने यह जानने का मन बना लिया है कि पैसा क्या होता है ? फिर क्या आपने अपने किसी बड़े से कुछ पूछा?
3. अगर पूछा हो, तो उन्होंने जवाब क्या दिया ?
4. क्या आपके पास हमेशा कुछ न कुछ पैसे होते हैं ?
5. क्या आपने अपनी जेब में या किसी डिब्बे में रखे पैसे कभी खोये हैं? फिर क्या आपने घर के किसी बड़े को यह बताया?

मीठे बाबा

– डा. नरेंद्र दाभोलकर

अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति का जब परोक्ष रूप से भी अस्तित्व नहीं था, तभी भानुदास गायकवाड मीठे बाबा बन गया था। यह वर्ष 1982 की बात है। बताया जाता है कि महाराष्ट्र के बारामती गाँव का 25-26 साल का यह युवक अपने खेत में गुलर के पेड़ के नीचे सोया था। अचानक उसके शरीर में कुछ संचार होने के कारण वह जाग गया। और आश्चर्य! उसके स्पर्ष में अचानक एक मीठापन आ गया। पहले तो किसी ने भरोसा नहीं किया। फिर चाय बनाने के लिए पानी लाया गया। उसमें शक्कर न डालकर भानुदास ने अपनी ऊँगली डाली, चाय तैयार हुई, जो बिलकुल मीठी थी। भानुदास की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। इसमें बदमाशी की आशंका के चलते पुलिस ने उसे तलब किया। पुलिस अधिकारी के सामने बैठते समय उसने उससे हाथ मिलाया और बड़े आश्चर्यजनक ढंग से पुलिस अधिकारी के हाथों की उँगलियों मीठी बन गईं। इसी प्रकार से आकाशवाणी की एक वृत्तनिवेदिका की चुड़ियों को उसने स्पर्श किया। चुड़ियाँ मीठी बनीं और समाचार आकाशवाणी पर गूँजता रहा। इसके उपरांत उस समय खूब चलने वाले साप्ताहिक ने भानुदास पर आवरण कथा बनाई। उसका शीर्षक था-'भगवान दत्त की कृपा हुई, शरीर में मिठास आई।' इसके चलते भगवान दत्त के मंदिर के निर्माण कार्य के लिए पैसे भी इकट्ठे होने लगे।



इसी बीच और एक घटना घटी। महाराष्ट्र में उस समय परामानसशास्त्र संस्था कार्यरत थी। उसने भानुदास गायकवाड के मीठेपन पर अनुसंधान किया। उनके लिए विज्ञान के ज्ञात नियमों के बाहर की यह घटना लगी। उन्होंने विश्वस्तर की परामानसशास्त्र संस्था से संपर्क किया। उनमें भी भानुदास के प्रति जिज्ञासा जाग्रत् हुई। भानुदास गायकवाड देखते ही देखते 'मीठेबाबा' बन गया। असल में इनमें से एक ने भी भानुदास के कथित देवी चमत्कार की वास्तविकता को खोजने का वैज्ञानिक प्रयास नहीं किया। इसके लिए मैं बारामती गया। वहाँ अँड. विजय मोरे जी के घर पर भानुदास को बुलाया गया। उसके द्वारा मीठा बनाया गया पानी सील किया गया। पानी के ये सारे सीलबंद नमूने दिल्ली की श्रीराम रिसर्च इंस्टिट्यूट नामक मशहूर संस्था को भेज दिए गए।

असल कठिनाई यह थी कि मीठे पानी में कृत्रिम द्रव मिलाने से पानी मीठा हुआ है, यह समझना बड़ा आसान था लेकिन पानी में निश्चित रूप से कौन सा द्रव मिलाया गया है इसका पता लगाने के लिए सैंकड़ों परीक्षण करने की आवश्यकता थी। इस संबंध में कुछ जोखिम उठाकर मैंने 'सकरीन' का परीक्षण करने की बात कही।

शक्कर से 500 गुना मीठा रहनेवाला 'सकरीन' एक कृत्रिम रासायनिक द्रव्य है। उसकी गोलियाँ मेडिकल शॉपिज में मिलती है। वे सस्ती होती हैं और दो उँगलियों से उसका पाउडर बनाकर उसे उँगलियों से लगाना बड़ा आसान रहता है। उसकी कम मात्रा भी पर्याप्त रहती है। इन सभी को ध्यान में रखकर मीठेबाबा भी इसी का प्रयोग करते होंगे, ऐसा अनुमान लगाकर उसके द्वारा मीठे बनाए पानी में 'सकरीन' की मात्रा की जांच करने को कहा। मेरा अनुमान बिल्कुल सही निकला। पानी के नमूने में सकरीन मिला था और हाथ धोकर बाद में लिए गए हर नमूने मे सकरीन की मात्रा क्रमश: कम होती पाई गई। सकरीन पूर्णत: कृत्रिम पदार्थ है। इसके चलते इस घटना का परामानसशास्त्र तथा शरीर में निर्माण होनेवाले अद्‌भुत स्रोतों से कुछ भी संबंध न होने की पुष्टि मिली।

असल में इस घटना को अंतर्राष्ट्रीय स्तर तक ले जाने से पहले संबंधित व्यक्ति या संस्था द्वारा यह परीक्षण करना चाहिए था। लेकिन इस घटना को चमत्कार मानकर इसके सबूत इकट्ठे करने में रुचि रखनेवाले इसे क्यों करेंगे।

हाथ लगानेवाली हर वस्तु को मीठी बनाने का यह चमत्कार आगे जाकर हमारे अंनिस के चमत्कार प्रस्तुतीकरण में मनोरंजन और आकर्षण का एक हिस्सा बन गया। दर्शकों में से असंख्य लोगों को इस मिठास की अनुभूति हमारे कार्यकर्ता कराते हैं। उसके हाथ के सामने जो-जो तीखी वस्तुएँ लाई जाती हैं, उसे वे मीठी बना देते हैं। कोई चालाक श्रोता हाथ धोकर, पोंछकर दुबारा चमत्कार करने की माँग करता है। हमारे कार्यकर्ता अच्छे ढंग से हाथ पर बहुत सारा पानी लेकर, साबुन

लगाकर, तौलिये से हाथ पोंछ लेते हैं फिर भी अपनी उँगलियों की मिठास कायम रहने के चमत्कार को दिखाते हैं। इस प्रकार की चुनौतियों की संभावनायों को ध्यान में रखकर ही हमारे कार्यकर्ता पहले से तैयार रहते हैं।

कई स्कूलों में किसी न किसी रूप में यह चमत्कार कई बार दिखाया गया है। इसके चलते अब कुछ जगहों पर मीठे बाबा का चमत्कार शुरु करते ही बच्चे 'सकरीन, सकरीन' कहकर चिल्लाते हैं। यह है अंधश्रद्धा निर्मूलन कार्य का वास्तविक असर।

असल में मीठेबाबा का भंडाफोड़ करने हेतु इतना काफी था, लेकिन मीठेबाबा इतने मे चुप बैठनेवाला नहीं था। महाराष्ट्र विशाल है। यहां लोग चमत्कार देखने और फँसने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस संबंध में कोई कानून न होने के कारण मीठेबाबा का महाराष्ट्र-भ्रमण लगातार चलता रहा।

एक बार मुम्बई के मुख्य डाकघर में जाकर उसने चमत्कार के प्रस्तुतीकरण की शुरुआत की। लोगों की भीड़ जमा हुई। पोस्ट ऑफिस में काम करनेवाली समिति की एक कार्यकर्ता ने इसे देखा। उसने बाहर जाकर झट से सकरीन की गोलियाँ प्राप्त कीं, उसका चूर्ण बनाकर उँगलियों पर पोतकर मीठे बाबा का चमत्कार स्वयं ही बड़े जोर शोर से दिखाना शुरू किया।

मीठेबाबा ने बोरिया-बिस्तर समेटा, लेकिन वह इतनी आसानी से हार माननेवाला नहीं था। उसने कुछ समय बाद मुम्बई में 'मातोश्री' बँगले पर बालासाहब ठाकरे से भेंट की। बालासाहब को भानुदास ने हस्तस्पर्श से मिठास दे दी। 'दैनिक सामना' ने पूरे एक पन्ने पर इस खबर को जगह दी। उसमें इस बात का उल्लेख किया कि बालासाहब ने अपने स्टाइल में कहा कि 'अच्छा हुआ, अब तक हमें बारामती के एक ही बाबा का पता था (शरद पवार) जो कड़ूबाबा था, आप मीठेबाबा मिल गए।'

इसके कुछ दिन बाद 'दैनिक सकाल' अखबार के पहले पन्ने पर मीठे बाबा की चार कॉलम की खबर ने सभी को आकर्षित किया। उसमें मेरे प्रति गुस्से के साथ चुनौती भी थी। असल में इस प्रकार की खबरें छापना 'दैनिक सकाल' अखबार की परम्परा के विपरीत था, फिर भी खबर पहले पन्ने पर आई थी। इसलिए उसका खंडन करना आवश्यक था, जो मैंने किया। 'सकाल' ने उसे प्रसिद्ध भी किया। इस मामले से विस्मृति में गए मीठे बाबा को अनायास और बड़ी प्रसिद्धि मिली। इसके चलते चुनौती-प्रक्रिया को पूरा करने हेतु मैंने मीठे बाबा से बातचीत करना चाहा। मीठे बाबा को इसमें जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। अलग-अलग तरह के विवादास्पद बयान देकर अपने-आपको सुर्खियों में रखने की उसकी मंशा थी। इसी वजह से चमत्कार को साबित करने की चुनौती केवल रोचक समाचार का ही विषय बनकर रह गया। इससे किसी उपलब्धि की अपेक्षा बहुत कम थी।

इस दौरान मीठे बाबा और पूना के रोटरी क्लब द्वारा एक अलग ही दाँवपेच रचाया गया। रोटरी क्लब ने मीठे बाबा के चमत्कारों का कथित वैज्ञानिक परीक्षण करने की घोषणा की। इसका निमंत्रण मुझे नहीं मिला था। साथ ही यह परीक्षण कैसे होगा, इसके बारे में भी कोई विचार-मंथन नहीं हुआ था। कोई एक जादूगर, भौतिक वैज्ञानी, आहार विशेषज्ञ को बुलाकर रोटरी क्लब ने यह परीक्षण करवाया। मीठे बाबा द्वारा मीठा बनाया गया पानी लोगों को दिया गया लेकिन किसी प्रयोगशाला में उसे नहीं भेजा। यह एक सोची-समझी साजिश थी। यह एक पूर्वनियोजित षडयंत्र था। इसके चलते भानुदास गायकवाड़ के दैवी चमत्कार के सच होने को बल मिला। समाचार-पत्रों के लिए खबरें पहुँचाई गईं लेकिन पूना के किसी भी अखबार में इसे जगह नहीं मिली।

औंरगाबाद के 'दैनिक लोकमत' के पहले पन्ने पर यह खबर जरूर प्रकाशित हुई। (उस समय लोकमत पूना से प्रकाशित नहीं होता था।) लोकमत के अन्य संस्करणों में भी यह सनसनीखेज खबर सुर्खियाँ बनकर प्रसिद्ध हुई। उसमें लिखा था कि ''मीठे बाबा ने चुनौती-प्रक्रिया बड़ी सफलता से पूरी की, लेकिन खबर मिलकर भी दाभोलकर नहीं आए।' इस परीक्षण में मीठे बाबा की दैवी शक्ति प्रमाणित हुई है। उसने अब माँग की है कि 'दाभोलकर अब पैदल चलकर प्रायश्चित के रूप में पंढरपुर-आलंदी की तीर्थयात्रा करें।'

मराठवाड़ा में दैनिक लोकमत दूर-दूर तक पहुँचता है। इस कारण यह खबर पढ़कर हमारे कार्यकर्ता थोड़े सिटपिटाए। इस झूठी खबर का खंडन मैंने तुरंत किया लेकिन दैनिक लोकमत ने इसे तीसरे दिन और अंदर के पन्ने पर प्रकाशित किया। कहर तो तब हुआ जब रोटरी क्लब की सदस्या रही एक वकील महिला ने मेरे ऊपर मानहानि की एक लाख की नोटिस भेज दी। मैंने इसके उत्तर में लिखा कि 'मीठे बाबा सकरीन का आधार लेकर यह चमत्कार करता है, इस बात पर

मैं कायम हूँ, इसलिए यह मुकदमा चलना चाहिए। इसके माध्यम से न्यायाधीश के सामने इसे सिद्ध करने का मुझे मौका मिलेगा।' इसके बाद मुकदमे का ज्वार शांत हुया। मीठा बाबा अपने कथित चमत्कार करता रहा। उसने इस बात को अच्छी तरह से समझ लिया था कि 'यदि मुझे सुर्खियों में रहना है तो अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति को मेरे चमत्कारों पर गौर करना होगा तथा उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए मुझे उन्हें उकसाना होगा।' उसकी इस चाल को समझकर हमने भी जान-बूझकर उसे नजरअंदाज किया।

एक बार पूना में महात्मा फुले सभागार में मैं और डॉ.श्रीराम लागू जी का 'विवेक जागरण: वाद-संवाद' का कार्यक्रम चल रहा था। सभागार में भारी भीड़ थी। कार्यक्रम अपनी चरम सीमा पर था कि दरवाजे पर खड़े कार्यकर्ताओं से झगड़ा करते हुए मीठे बाबा अंदर घुस गया। उसके साथ कैमरा लेकर स्थानीय केबल का आदमी और वकील भी था। 'दाभोलकर मुझे बदनाम करते हैं इसलिए उन्हें सीधे चुनौती देने के लिए मैं आया हूँ,' ऐसा दावा करते हुए भीड़ में शोर मचाते हुए वह आगे बढ़ने लगा।

उसे कैसा रोका जाए, इस प्रश्न से कार्यकर्ता परेशान हो गए। क्योंकि उसका इरादा ही धाँधली मचाना था। संयोग से इस कार्यक्रम के लिए उस इलाके के पुलिस थाने के पुलिस अधीक्षक आए हुए थे। वे सिविल ड्रेस में थे। उन्होंने परिस्थिति को भाँप कर मीठे बाबा को तुरंत बाहर निकाला।

तहकीकात के बाद यह भी पता चला कि चुनौती देने हेतु मीठे बाबा जिस वकील को लेकर आया था, वह भी फरेबी निकला।

इसके बाद दो बार मैं भाषण देने के हेतु बारामती गया। किसी के न बुलाने पर भी मीठे बाबा मेरे सामने पहली पंक्ति में बैठ गया। वह इसके पूर्व 'सकाल' और 'लोकमत' में छपी खबरों के कटिंग लेकर आया था और उनके जेरॉक्स उपस्थित प्रमुख अतिथियों को बाँट रहा था। लेकिन सभी ने उसे नजरअंदाज किया। उसने समय-असमय मुझे फोन करके, फोन कर अनाप-शनाप बोलकर, धमकी देकर आदि कई तरीकों से मुझे उकसाने की कोशिश की। ये सारे प्रकरण अपने आप तभी बंद हुए जब उसे पता चला कि मेरा मानसिक स्वास्थ्य बिगाड़ने में इन बातों का कोई असर नहीं हो रहा है। मैं और हमारी अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति अपने विवेकवादी और विज्ञाननिष्ठ विचारों-आचारों पर प्रतिबद्ध हो अविचल कार्य करती रही। उसका यह नतीजा निकला कि मीठे बाबा का जादू कालौघ में खत्म हुआ।

स्रोत: पुस्तक 'अंधविश्वास उन्मूलन' आचार) (दूसरा भाग), संपादक: डा.सुनील कुमार लवटे, अनुवादक: प्रकाश कांबले)

बाबैन (कुरुक्षेत्र) के स्कूल में तर्कशील कार्यक्रम

दिनांक 22-10-22 को पैराडाइज़ सीनियर सेकेंडरी स्कूल-बाबैन जिला- कुरुक्षेत्र मे एक दीवाली मेले का आयोजन किया गया। इस में स्कूल के कुछ विद्यार्थियों के द्वारा गीत-संगीत एवं नृत्य आदि प्रस्तुत किए गए।

इस आयोजन का मुख्य आकर्षण तर्कशील सोसायटी हरियाणा की एक टीम द्वारा चमत्कारों का पर्दाफाश कार्यक्रम रहा। इस कार्यक्रम में बलवंत सिंह लेक्चरर एवं राकेश कुमार ट्रीमैन द्वारा जादू के विभिन्न ट्रिक दिखाए गए तथा कुछेक चमत्कारिक आईटमों की वैज्ञानिक तौर पर व्याख्या प्रस्तुत की गई।

कार्यक्रम प्रस्तुत करने के दौरान बलवंत सिंह ने तर्कशील सोसायटी द्वारा दुनिया भर के देव पुरुषों, तांत्रिक मांत्रिकों, मुल्लाओं, बाबाओं के सामने रखी गई 23 शर्तों की चुनौती एवं सोसायटी के उद्देश्यों के बारे में विस्तार पूर्वक जानकारी प्रदान की।

कार्यक्रम के आयोजन में स्कूल के डायरेक्टर सुरजीत सिंह सैनी का विशेष योगदान रहा।कार्यक्रम के अंत में स्कूल की प्रिंसिपल डा. रेखा गोगिया ने तर्कशीलों की टीम का इस शानदार प्रस्तुति के लिए धन्यवाद किया तथा अपने संबोधन में उन्होंने कहा कि ऐसे वैज्ञानिक चिंतन का प्रचार प्रसार करनेवाले कार्यक्रम समाज में स्थान स्थान पर आयोजित किए जाने चाहिएं।

नया संसार

देश हमारा
धरती अपनी
हम धरती के लाल
नया संसार बसायेंगे
नया इन्सान बनायेंगे
मनुज को
मुक्ति दिलायेंगे!

– शील

लिंगायत संत शिवमूर्ति मुरूघा शरणारू गिरफ्तारः दो नाबालिगों ने लगाए यौन उत्पीड़न के आरोप, पॉक्सो एक्ट में दर्ज है केसः

कर्नाटक पुलिस ने लिंगायत मठ सेक्स कांड के आरोपी संत शिवमूर्ति मरुघा शरणारू को हिरासत में ले लिया है।

पंजाबी ट्रिबियून

नवरात्रि के पहले दिन जीभ काटकर चढ़ाई, बेटे ने पहुँचाया अस्पताल, ये आस्था नहीं अंधविश्वास है-

- डॉ दिनेश मिश्र

इस संबंध में अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के अध्यक्ष डॉ.दिनेश मिश्र ने कहा कि ये आस्था नहीं अंधविश्वास है, लोग इस तरह के काम कर जाते हैं जो खुद के साथ परिजनों के लिए भी पाड़ादायी होते हैं।

उन्होंने कहा कि जो लोग पूर्व में ऐसा कर चुके हैं, उन्हें संक्रमण और विकलंगता हो चुकी है जिन्हें आज भी शारीरिक व मानसिक परेशानियों से जूझना पड़ रहा है। उन्होंने अपील की कि लोग इस तरह के अंधविश्वास से बचें।

जनजागरूकता ब्रेकिंग

पलारी, जनजागरुकता। राजधानी से 88 कि.मी. दूर बलौदाबाजार जिले के पलारी ब्लॉक के गाँव मल्लीन में आस्था के नाम पर अंधविश्वास में बुजुर्ग ने घर के देवी-देवता को जीभ काटकर चढ़ा दी। घायल बुजुर्ग पिता को पुत्र और भाई ने मिलकर किसी तरह पलारी अस्पताल में भर्ती कराया। पलारी ब्लाक के ग्राम मल्लीन निवासी 55 वर्षीय मोहनलाल साहू ने भक्ति और आस्था के नाम पर अंधविश्वास में अपने ही जीभ रेजर से काटकर घर के पूजा स्थल मे देवी-देवता को चढ़ा दी। पलारी से यह गांव 18 कि. मी. दूर जबकि पलारी राजधानी से 70 कि.मी. दूर है। इसकी जानकारी घर की बहू को होते ही उसने तत्काल अपने पति पीतांबर साहू को सूचना दी। तब बेटे ने तत्काल घायल पिता को पलारी सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र पहुंचाया। पलारी अस्पताल के डॉ. बी एस घ्रुव ने बताया कि घायल मोहनलाल साहू का उपचार कर जीभ में टांके लगा दिए हैं और निगरानी में रखकर उपचार किया जा रहा है। अभी उनकी स्थिति ठीक है, चिंता की बात नहीं है, जल्द ही उन्हें अस्तपताल से छुट्टी भी दे दी जाएगी।

बेटे ने बताया-पिता घंटो पूजा-पाठ करते हैं

घायल बुजुर्ग को उसका बेटा पीतांबर साहू एवं भाई सोहनलाल साहू अस्पताल लेकर पहुंचे थे। बेटे पीतांबर साहू ने जनजागरुकता को बताया कि पिता पूजा में ज्यादा विश्वास करते हैं और रोज घर के पूजा रूम में देवी देवताओं की घंटों आराधना भी करते हैं। पीतांबर साहू ने बताया कि आज भी सुबह से पूजा घर में ही थे लेकिन काफी देर तक वो पूजा रूम से बाहर नहीं निकले तो उनको खाना खाने के लिए बुलाने मेरी पत्नी कमरे में गई तो देखा कि वे चुपचाप देवी देवता के सामने बैठे थे और उनके मुंह से खून बह रहा था, पूजा रूम में चारों तरफ खून ही खून फैला हुआ था। पीतांबर साहू ने बताया कि जब उनसे पूछा गया तो उन्होंने अपना जीभ को रेजर से काटकर देवी देवता को चढ़ाने की बात बताई। मुझे सूचना मिलते ही मैं अस्पताल लेकर पहुंचा।

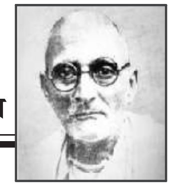
हैवानियत-56 टुकड़े काटकर महिलाओं की दी बलि...मांस भी खाया

केरल में दो महिलाओं की बलि देने की वीभत्स घटना ने वहां अंधविश्वास के खिलाफ कठोर कानून लाने की जरूरत पर बल दिया है। केरल की सच्चाई यही है कि हाल के वर्षों में अपनी प्रगतिशील छवि से पीछा छुड़ाकर वह तेजी से अंधविश्वास, तंत्र मंत्र और काला जादू की गिरफ्त में फंसता चला गया है।

केरल के कोच्चि में अमीर बनने के लिए दो महिलाओं की बलि देने की घटना रोंगटे खड़े कर देने वाली तो है ही, इससे प्रगतिशील छवि वाले केरल की बर्बर और मध्ययुगीन तस्वीर भी सामने आती है। विगत सितंबर में लॉटरी बेचने वाली एक महिला की गुमशुदगी की रिर्पोट पर पुलिस जब मोबाइल कॉल और सी सी टी वी फुटेज के आधार पर पारंपरिक वैद्य भगवंत सिंह के घर पर पहुंची,तो पूछताछ में न सिर्फ उस महिला की हत्या का पता चला, बल्कि यह भी सामने आया कि विगत जून में भी

... शेष पृष्ठ 45 पर

धर्म का ढकोसला



- राधा मोहन गोकुल

मनुष्य समाज में बहुत सी मूर्खताएँ अयौक्तिकताएँ धीरे-धीरे घर कर चुकी हैं। इन्हें हम चाहे धर्मान्धता कहें, रूढ़िप्रियता कहें, चाहे उच्च कक्षा के दार्शनिक या अवैज्ञानिक विचार का फल कहें, पर किसी भी अविकृत मस्तक, आँख कान रखने वाले को इस बात से इन्कार नहीं हो सकता कि मनुष्य जाति के लिए धर्म घातक विष का काम करता रहा है, करता है और करता रहेगा। हमारे मित्र धर्म, मजहब या रिलीजन की अपने-अपने तौर पर लम्बी-चौड़ी व्याख्या कर सकते हैं व करते हैं, और इन्हीं अनर्गल व्याख्याओं के बल से इन्होंने सदा जनसमूहों को अन्धकारमय गर्त में रखा है व रखते हैं। लेकिन वे देखने वाली आँखों को, समझने वाले दिमागों को और अनुभव करने वाले हृदयों को, यदि वे धर्म की कोकीन से बिल्कुल गत चेतना नहीं हो गये तो, धोखा नहीं दे सकते। धर्म का अर्थ चाहे 'धारण करने वाला' हो, मजहब के अर्थ तुर्की में चाहे 'गरोह' के हों, रिलीजन का अर्थ चाहे अंग्रेजी में नैतिक नियमों से बाँधने वाला हो किन्तु इनके जो व्यावहारिक फल गत सहस्त्र वर्षों से हम देख रहे हैं वह हमें यह बात कहने को बाध्य करता है कि धर्म, मजहब या रिलीजन आदि शब्दों का एक ही अर्थ है और वह है मनुष्य-संज्ञापहारी। आदमी को पागल बनाने वाला नशा। धर्म के मानने वाले छोटे बच्चों से भी अधिक बुद्धिहीन होते हैं, इसलिए धर्मों का संसार में कोई भी सदुपयोग नहीं है।

मसीह ने बे-समझों की हँसी उड़ाने के लिए एक समय कहा था कि तुम उन गली में खड़े हुए बच्चों के समान हो जो कहता है कि हमने वंशी बजाई तुम नाचे नहीं और रूठ बैठता है। आज भी हम यही देखते हैं। शिया और सुन्नियों का फसाद, वहावियों और गैर-वहावियों की तकरार, कादरियों का पत्थरों से मार डाला जाना, मद्रास में रोमन कैथालिक ईसाइयों और मुसलमानों की मारपीट, ग्लासगों मे कैथालिक और प्रोटेस्टेण्टों की जूतम-पैजार, भारत में हिन्दू-मुस्लमानों का रक्तपात, धर्म के नाम पर इतिहास के पृष्ठों को कलंकित कर रहे हैं।

दिगम्बरों, श्वेताम्बरों, आर्यों, सनातन धर्मियों और पंच-देवता के उपासकों के आपस के झगड़ों को कोई झुठला नहीं सकता लेकिन जब हम इन झगड़ों की गहरी तह तक पहुँचते हैं तो मालूम होता है कि केवल लड़कबुद्धि मात्र पागलपन, सरासर बेहूदगी के सिवा कोई भी ऐसा कारण धार्मिक झगड़ों में नहीं होता जिस पर समझदार हँसकर चुप न रह जाय।

गत कलकत्ते के दंगे की जड़ को ही लीजिए। एक 200-250 आदमियों का हिन्दू समारोह अपने ढंग पर अपने ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए किया जाता है। अस्पताल के कोने पर पुलिस इंस्पेक्टर ने बाजा (जिसमें एक ढोलक और एक तुरही थी) बन्द कर देने को कहा। ढोलक बन्द हो गई। इतने में एक मुसलमान ने आकर ढोलक पकड़ी और कुछ कहा। इसके बाद ही मस्जिद से काठ, ईंट, पत्थर, काँच आदि के प्रहार प्रारम्भ हो गये क्योंकि मुहम्मदी ईश्वर किसी न किसी कारण क्रुद्ध हो गया। मद्रास में भी ईसाइयों के जुलूस से मुहम्मदी खुदा नाखुश हो गया। मैं नहीं समझता कि कोई समझदार आदमी इस प्रकार के झगड़े को पसन्द करेगा। जब खुदा दंगा कराते हैं और गवर्नमेण्ट तलवार और बन्दूकों से खुदा की इच्छा पूरी नहीं होने देती तो मैं गर्वनमेण्ट को खुदा से लाख बार ज्यादा ताकतवर, जानकार और सर्वव्यापी मानूँगा।

मैंने अपनी साठ वर्ष से अधिक अवस्था में जहाँ तक खोज की, धर्म या मजहब को मनुष्य के लिए कहीं भी उपयोगी नहीं पाया, न कहीं मैंने ईश्वर या खुदा की जरूरत देखी। वह दिन दुनिया के लिए बड़ा अच्छा होगा जिस दिन मजहबी डिपार्टमेण्ट मानव समाज से सदा के लिए उठा दिया जायेगा। मजहब उसी तरह गुण्डेपन की जड़ है जैसे इम्पीरियलिज्म।

वह भाव जो एक मनुष्य को दूसरे के अधिकारों पर आक्रमण करने का रास्ता बताते हैं अत्यन्त बुरे हैं। परन्तु जो झगड़े रोटी के लिए होते हैं उनमें सार है, वह पशु स्वभाव या

प्रकृतजन्य हैं, बुरे होने पर भी हमें समय-समय पर उनका सामना करना ही होगा, और समस्त संसार में साम्यवाद फैलाकर इनको भी, मनुष्यों का सम्बन्ध है, मिटना पड़ेगा। परन्तु झूठमूठ धर्म का मिथ्या पचड़ा खड़ा करके मनुष्यों के दुख को चौगुना करना कहाँ की बुद्धिमानी है, मैं नहीं समझ सकता।

रोटी-कपड़े के दुख से दुखी चोर या उठाईगीर जब अपने धनिक या सम्पन्न पड़ोसी का माल चुराता, छीनता या उड़ा लेता है तो उसका कारण प्रकट और पशु-प्रवृत्ति का परिचायक है। जब कोई धनिक जबर्दस्त जाति या व्यक्ति दूसरी जाति या व्यक्ति को लाठी के बल दबाता या लूटता है तो एक भी मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाली एक पाशविक कृति है परन्तु एक ईश्वर की कल्पना करके धर्मों की बेसिरपैर इमारत खड़ी करना और परस्पर सिर फोड़ना तो पशुओं से भी नीचे गिरे हुए लोगों के काम हैं। क्या सचमुच मनुष्य पशुओं और असभ्यों की अवस्था से भी अभी बहुत नीचा है ?

मुसलमानों ने मन्दिर तोड़ने का नमूना हिन्दुओं के सामने रखा, उन्होंने भी मस्जिद तोड़कर बतलाया कि वे इस कला को सीख चुके। लेकिन यह न मालूम हुआ कि गुरु-चेला में किसी को कुछ लाभ भी हुआ। ईंट, पत्थर और गारों में पहले लाखों रुपये बिगाड़े, फिर उन्हें तोड़ा और अपने सिर तुड़ाये और अब फिर उन्हें तैयार करेंगे इसी प्रकार इस बेहूदगी की पुनरावृत्ति होती रहती है। जो मस्जिद व मन्दिर टूट गये चाहिए था उन्हें सदा के लिए छोड़ देते वहाँ उन गरीबों के लिए सस्ते झोपड़े बनाते जिन्हें महजब से ज्यादा शीत और वर्षा से बचने के लिए घर की जरूरत है।

एक हिन्दू जब मुसलमान या ईसाई होता है या एक मुसलमान जब हिन्दू या ईसाई बनता है तब चेहरे में, बुद्धि में, चाल-ढाल में कोई भी अन्तर नजर नहीं आता। सब ज्यों के ज्यों मनुष्य बने रहते हैं। हाँ एक बात जरूर है वह यह कि जो आज तक भंग पीकर पागल हो रहा था वह कल से स्कॉच ह्विस्की पीकर विक्षिप्त बनेगा। मनुष्य जाति के लिए यह कहीं अच्छा होगा कि वह धर्म की शराब पीना छोड़कर सीधा-सादा मनुष्य बन बैठे और धर्म के नाम पर रक्तपात कर मनुष्यत्व को कलंकित करने का कारण न बने।

भारत में इन लड़ाइयों का एक उपयोग यह है कि हिन्दू, मुस्लमान, ईसाई आपस में लड़-लड़ कर लड़ना सीखते हैं, तबीयतों को लड़ाका बनाते हैं। सम्भव है एक दिन यह सब मिलकर धर्म के भूत के पंजे से निकलें और अपनी मातृभूमि को स्वतंत्र करें। देखूँ वह पवित्र दिन कब आता है।

(स्रोतः पुस्तक 'धर्म का ढकोसला)

... पृष्ठ 43 का शेष उस घर में एक महिला की बलि दी गई थी। बताया जाता है कि जिस रशीद उर्फ मोहम्मद शफी के कहने पर दो महिलाओं की बलि दी गई, वह यौन विकृति का शिकार था और एक बुर्जुग महिला के खिलाफ यौन हिंसा के मामले में दो साल पहले जमानत पर छूटा था। 21 वी सदी में ऐसी घटनाएं सभ्य समाज के लिए धब्बा हैं। पर केरल जैसे राज्य की सच्चाई यही है कि हाल के वर्षों में शिक्षित, प्रगतिशील और जमीनी विकास की अपनीं छवि से पीछा छुड़ाकर वह तेजी से अंधविश्वास, तंत्र मंत्र और काला जादू की गिरफत में फंसता चला गया है। जिस कोच्चि में ये घटनाएं हुई हैं, वह काला जादू के लिए कुख्यात है। तांत्रिक अनुष्ठान से लोग भले अमीर न बनते हो, ओझा और तांत्रिक जरूर अमीर बन जाते हैं और इसके लिए विज्ञापनों पर भारी खर्च करते हैं। और अमीर बनने से लेकर घरेलू समस्याओं के निवारण के लिए आम लोग ही नहीं, राजनेता, उद्योगपति और अभिनेता तक इन तांत्रिकों के पास पहुंचते हैं। भले राज्य क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो इसे दर्ज न करता हो, पर वहां अपराध और हत्या के सलाना आंकड़ों में अंधविश्वास से जुड़े अनेक मामले होते हैं। इसी कारण केरल युक्तिवादी संगठन और केरल शास्त्र साहित्य परिषद जैसी संस्थाएं वर्षों से काला जादू पर प्रतिबंध लगाने की मांग कर रही हैं इसके बावजूद इस दिशा में कानून बनाने की कोशिश विगत में परवान नहीं चढ़ पाई, जबकि वर्ष 2019 में राज्य विधि आयोग ने इस संदर्भ में एक ड्राफ्ट बिल पेश किया था, जो गृह मंत्रालय को मंजूरी के लिए लंबित है। अंधविश्वास के इस फलते फूलते बाजार पर अंकुश लगाने के लिए काला जादू के खिलाफ कठोर कानून लाने का कदम अविलंब उठाना पड़ेगा। तभी मोहम्मद शफी जैसे तांत्रिकों और उनके कहने पर ऐसे जघन्य अपराध करने वालों को सख्त सजा देना संभव हो सकेगा।

लघुकथा

घ्राण-शक्ति की मौत

- **कृष्ण कायत**



काके, यह सूंडी मारने वाली दवाई की बोतल बदल कर दे। यह लीक हो रही है । सेठ ने काके को ऊंची आवाज लगाते हुआ कहा ।

काके ने दवाई की बोतल बदलते हुए ध्यान दिया कि उस डिब्बे की अधिकतर बोतलें लीक हैं । सेठ को बताने पर सेठ ने पूरी अलमारी साफ करने का हुक्म सुना दिया। अलमारी साफ कर बैठा ही था कि सेठ का जानकार मित्र दुकान पर आ गया जो अक्सर वहां आता रहता था। काके को देख कर बोला, काका फिर से अपनी दुकान पर काम के लिए आने लग गया क्या ? सेठ ने हां में जवाब दिया और दोनों बातों में मशगूल हो गये। काका भी फुर्सत पा कर विचारों के जाल में खो गया। उसे सब पुरानी बातें फिर से याद आने लगी ।

काका सत्रह वर्ष का लड़का कमलकांत था । बारहवीं के पेपर देने के बाद घर की गरीबी व कमजोर आर्थिक हालातों ने रिजल्ट आने तक उसे काम ढूंढने के लिए मजबूर कर दिया । कई जगह काम की तलाश के बाद किसी जानकार ने उसे इस खाद - बीज व कीटनाशक दवाइयों की दुकान पर लगवा दिया था । काके नाम से उसे इसी सेठ ने पुकारा था जो बाद में दुकान से संबंधित हर शख्स की जुबान पर चढ़ गया था । अप्रैल - मई में जब काका दुकान पर लगा था तो नरमा कपास इत्यादि फसलों के बीजों का ही व्यापार ज्यादा था । जून तक आते - आते इक्का दुक्का कीटनाशक दवाइयां भी दुकान पर आने लगी थीं ।

काम ज्यादा होने के कारण काका थक जाता था और कीटनाशक दवाइयों की बदबू से उसका जी भी मितलाने लग जाता था । इसलिए बारहवीं का रिजल्ट आते ही काका दुकान छोड़कर दुबारा आगे की पढ़ाई करने की योजना बनाने लगा क्योंकि घरवालों ने उसे आश्वासन दिया था कि बारहवीं अच्छे नंबरों से पास होने पर आगे पढ़ाई शुरू करवा देंगे । थकावट के कारण दो तीन दिन से काके को बुखार चढ़ता था लेकिन काका फिर भी दवाई लेकर काम पर आ जाता था ।

उस दिन कीटनाशक दवाओं के तीन कार्टून गाड़ी से उतार कर दुकान पर रखते हुए काके को इतनी बदबू आई कि जी मितलाने लगा और उल्टी आ गई । उसी दिन काका दुकान का काम छोड़ गया ताकि आगे पढ़ाई शुरू कर सके ।

घरवालों को पता चला तो उन्होंने खूब खरी-खोटी सुनाई कि पहले ही मुश्किल से काम मिला था उसे भी छोड़ आया । आगे की पढ़ाई के लिए अभी हमारे पास पैसे नहीं हैं । जब हालात ठीक होंगे तब कहीं दाखिला करवाने का सोचेंगे । मायूस होकर काका कहीं हल्का और सुविधाजनक काम ढूंढने में लग गया लेकिन कमजोर डीलडौल व किसी काम का अनुभव न होने के कारण ढंग का काम नहीं मिल पाया । ऊपर से घर में हर समय खिच-खिच का माहौल बना रहता व सब उसे काम छोड़कर बैठ जाने के लिए कोसते रहते ।

थक हार कर उसने वापिस उसी दुकान पर काम पर लगने का निर्णय लिया । उसने सोच लिया था कि चाहे कीटनाशक दवाइयों की बदबू चढ़ने से वह मर ही क्यों न जाए इस बार वो यह काम नहीं छोड़ेगा । आखिर शर्म व ग्लानि में डूबा काका उसी दुकान पर काम के लिए चला आया और सेठ के पूछने पर झूठ बता दिया कि किसी अच्छे कालेज में दाखिला नहीं हो पाया इसलिए अगले वर्ष ही पढ़ाई जारी करने की कोशिश करेगा ।

दुकान इस समय कीटनाशक दवाइयों के डिब्बों से भरी पड़ी है और उनमें बहुत सी बोतलें लीक भी हुई रहती हैं लेकिन अब उसे बदबू नहीं आती और न ही जी मितलाता है। शायद काके के अरमानों के साथ उसकी सूंघने की शक्ति भी मर चुकी है ।

9896105643

संयोजक- हरियाणा प्रादेशिक लघुकथा मंच, मंडी डबवाली।

हरियाणवी गजल

राज अर दौलत का लालच खेल खेल्लै सै।
जंग म्हं जग नै बुरी मनसा धकेल्लै सै।।
दो लड़ैं जिब तीसरा हथियार बेच्चणिया
फायदा ठावै स मंहगा माल् पेल्लै सै।
फोज म्हं गभरू मरैं सैं आम जनता के
सिरफिरा हाकिम त बस जल्दी बगेल्लै सै।
तूं कदे तो पूछ ले दुखड़ा सिपाही का
रात दिन जो मौत गेल्यां फाग खेल्लै सै।
सीम पै लड़णा सही सै देश की खात्तर
पर उरै तो तूं निरी बकवास पेल्लै सै।
नीत अर नीती जड़ै गन्दी वजीरां की
देश की रैयत उड़ै सौ कष्ट झेल्लै सै।
पेट की असली लड़ाई वो हि जाणै सै
जीण खात्तर जोण पाप्पड़ रोज बेल्लै सै।
दो घड़ी भी धूप तो जो सह नहीं सकदा
फेसबुक पै युद्ध का वो ज्ञान पेल्लै सै।
चुण लिये जां भूल म्हं चै बेबसी म्हं तो
हिटलरां नै भी या जनता खूब झेल्लै सै।
लोकतन्तर म्हं कमी भी सैं मगर खड़तल
लीडरां नै बोट की ताकत नकेल्लै सै।

मंगतराम शास्त्री खड़तल

हौंसला

वो समेट रहा है अपने तंबू को
अपने झंडे-डंडों को
भगत सिंह की तस्वीरों को
गांधी जी के जंतर को
और साथ-साथ समेट रहा है
पाश और दुष्यंत की किताबों को भी.
उसने उतार लीं हैं
कुछ हार चढ़ी तस्वीरें
और उन्हें अपने झोले में रख लिया है.
वो वापिस अपने घर लौट रहा है
अपने साथियों के साथ
और कुछ साथियों के बगैर
अपनी मिट्टी में मिट्टी होने.
मैं उससे एक सवाल पूछता हूँ
कि क्यों नहीं टूटी तुम्हारी उम्मीद
कैसे बचा रहा यह हौसला?
वो कहता है..
हमारे तलुओं में कोई कील नहीं चुभती
इन्हें कंकरों की आदत है.
और रास्ते रोक लेने से
हौसले नहीं टूटते
हौसलों से अहंकार टूटते हैं.

अशोक कुमार

हरेक आवाज़ और गीत को उठाओ इतना ऊँचा
इतना ऊँचा कि धरती और आकाश झनझना उठें

-जेम्स बेल्डन जॉनसन

तर्कशील सोसायटी हरियाणा को सहयोग

1. राजेन्द्र कौर, (लेक्चरार पंजाबी) अम्बाला एंव आत्मा सिंह (सहा. कार्मिक अधिकारी उत्तर रेलवे) ने अपनी पुत्री सजोनर के जन्म दिवस पर तर्कशील सोसायटी हरियाणा को रु. 19000/-(उन्नीस हजार रुपए)का सहयोग भेजा है।

2.तर्कशील सोसायटी पंजाब के वरिष्ठ साथी सुमीत सिंह,अमृतसर और दमनजीत कौर ने अपने पिता दिवंगत कामरेड जोगिंद्र सिंह और माता अमरजीत कौर की स्मृति में तर्कशील सोसायटी हरियाणा को 1000 (एक हजार रुपए)का सहयोग भेजा है।

3.तर्कशील साथी रामेश्वर (एस. आई.हरियाणा पुलिस) द्वारा अपने घर पौत्र होने की खुशी में 3100 (इकतीस सौ रुपए)का सहयोग भेजा है।

तर्कशील सोसायटी हरियाणा सहयोग भेजने पर सभी साथियों का धन्यवाद करती है।

साथ ही सभी साथियों से अपील करती है कि तर्कशील सोसायटी को अपनी खुशियों में सहभागी बनाते हुए सहयोग भेजते रहें।

राज्य कार्यकारिणी

बकरीद को केक काट कर मनाने की सफल पहल

– डॉ दिनेश मिश्र



अपील रंग ला रही

बकरीद पे जीवित प्राणी की कुर्बानी देने के बदले केक काटकर रस्म अदा करने की, डॉ. दिनेश मिश्र की अपील का अब धीरे धीरे असर होने लगा है।

अपील से लखनऊ, आगरा, के अलावा मुजफ्फरपुर, गाजियाबाद, सहित अनेक स्थानों से पशु की कुर्बानी के बदले केक काट कर बकरीद मनाने के उदाहरण सामने आ रहे हैं। अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के अध्यक्ष डॉ दिनेश मिश्र ने बताया असम के धुबरी में रहने वाले विज्ञान शिक्षक अहमद हुसैन ने बकरीद में स्वयं के द्वारा पाले हुए मेमने की कुर्बानी देने के बदले स्थानीय जरूरतमंद परिवार को दिया ताकि उस परिवार को मदद हो सके। वहीं कुछ अन्य स्थानों से भी सकारात्मक खबरे आयी है जिनमें इस वर्ष मध्यप्रदेश, राजस्थान, छत्तीसगढ़, उत्तरप्रदेश, दिल्ली, सहित अनेक प्रदेशों में यह सकारात्मक पहल हुई। जन जागरूकता प्रयासों के चलते देश के कुछ स्थानों से पिछले वर्ष वर्ष पहली बार जीवित प्राणी की कुर्बानी देने के बदले केक काटकर रस्म अदा करने के इको फेंडली ईद मनाने के उदाहरण सामने आए. जो इस बार बढ़े हैं ।

देश के अनेक राज्यों में पशुबलि के निषेध के सम्बंध में कानून बने हुए हैं पर उनका पालन न होने से लाखों निर्दोष मासूम पशुओं की कुर्बानी/बलि दी जाती है। जबकि सभी धर्म प्रेम, अहिंसा की शिक्षा देते हैं ,अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए किसी दूसरे प्राणी की जान लेना ठीक नहीं है।

पिछले अनेक वर्षों से विभिन्न धार्मिक अवसरों पर पशु की कुर्बानी, पशु वध/बलि की कुरीति /परम्परा के विरोध में जनजागरण कर रही हैं चार वर्ष पूर्व महाराष्ट्र के कोराडी के मंदिर में, तथा कुछ अन्य स्थानों में नवरात्रि में बलि प्रथा बंद हुई है, वहीं बकरीद मेंभी अनेक स्थानों में मुस्लिम धर्मावलंबियों ने कुर्बानी की प्रथा का परित्याग किया, पिछले कुछ समय से अन्य देशों के साथ भारत में भी लखनऊ आगरा, मेरठ मुजफ्फरपुर, रायपुर, दमोह, नगरी, जयपुर, उदयपुर, बालाघाट, शिवपुरी सहित अनेक स्थानों में जन जागरण के प्रयासों से लोगों ने बकरीद पे बकरे के स्थान पर केक काटा, कुछ स्थानों पर तो लोगों ने केक पर ही बकरे का चित्र लगाया और कुछ स्थानों पर चॉकलेट का बकरा बना कर न केवल सांकेतिक रूप से रस्म अदा की, बल्कि निर्दोष प्राणियों की रक्षा भी की। कुर्बानी का अर्थ त्याग करना होता है, अपनी ओर से किसी जरूरतमंद को आवश्यकतानुसार नगद राशि, दवा, कपड़े, किताबें, स्कूल फीस आदि दे कर भी आत्मसंतुष्टि पाई जा सकती है,साथ ही देश के अन्य प्रदेशों की तरह किसी जिंदा प्राणी को काट कर उसकी जान कुर्बान करने के स्थान पर केक काट कर न केवल रस्म अदा करने बल्कि निर्दोष प्राणी की जान बचाने की पहल की जा सकती है और आगामी वर्षों में ऐसे प्रगतिशील कदमों में और भी अधिक परिवारों के जुड़ने का विश्वास है।

अध्यक्ष, अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति

कौन होता है सेक्युलर

सेक्युलर होना
अदब का होना है, दूसरे के अस्तिव को
स्वीकार करने की, लियाकत का होना है
भाषा, मजहब, रंग, लिंग–भेद
जाति, छूत–अछूत से आगे देखने की
समझ का विकसित होना
सेक्युलर होना है
घर से निकलो तो, दस कोस में बदल जाता है
बोली का अदब, पहनावे का तरीका, खान पान का ढंग
सबको अंगीकार करने की तहज़ीब का होना
सेक्युलर होना है
प्रांत से प्रान्त की यात्रा में, बदल जाती है भाषा, संस्कृति,
आराध्य, सबको सम्मान देने की रवायत
सेक्युलर होना है
सेक्युलर विभिन्नताओं में,
राष्ट्रवाद देखने की नजर का होना है
विविधताओ के प्यारे मुल्क में
सेक्युलर होने का अर्थ
वैश्विक अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण, सम्पूर्ण मानव होना है
इंसान होने की एकमात्र योग्यता
सेक्युलर होना है
वे जो सेक्युलर नही हैं,
इंसानी खोल में चलते फिरते मानव बम्ब हैं
जिन शतरंजी आक्रांताओं ने, गाली बना दिया है ये शब्द
वे सभी इसी शतरंज की बिसात पर, मारे जाएंगे एक दिन

वीरेंदर भाटिया

चतुर्थ विद्यार्थी चेतना परख परीक्षाः राज्य सम्मेलन 2022



विद्यार्थी चेतना परख परीक्षा, मिडल विभाग के विजयी विद्यार्थी राज्य कार्यकारिणी के साथ



विद्यार्थी चेतना परख परीक्षा, सेकेंडरी विभाग के विजयी विद्यार्थी सम्मान पत्रों सहित राज्य कार्यकारिणी के साथ

सामाजिक सरोकार, विज्ञान एंव साहित्य से जुड़े डाक्टर गुरूमेल सिद्दू



डा. गुरूमेल सिद्दू बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्तित्व रहे हैं, वे अंतराष्ट्रीय स्तर के जेनेटिक्स वैज्ञानिक थे। पिता निरंजन सिंह व माता करतार कौर के घर पासला (पंजाब) मे पैदा हुए। पी. ए. यू . लुधियाना से एम.एस.सी. और ब्रिटिश कोलंबिया यूनिवर्सिटी, वैंकुवर से पी.एच. डी. की । देश विदेश में विभिन्न स्थानों पर महत्वपूर्ण पदों पर रहते हुए उन्होंने प्लांट जेनेटिक में विशेष पहचान बनाई। वे उच्च कोटी के कवि, आलोचक, वैज्ञानिक रहे। वे अनेक किताबों के लेखक, सामाजिक दायित्व निभाने वाले रहे । उनकी मौत से कभी न पूरा होने वाली क्षति हुई है। उनकी मृत्यु पर तर्कशील परिवार गहरे दु:ख का इजहार करते हुए परिवार के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त करता है।

तर्कशील भवन, बरनाला में फेडरेशन ऑफ इंडियन रेशनलिस्ट एसोसिएशन के राष्ट्रीय सम्मेलन की झलक



फीरा सम्मेलन को संबोधित करते हुए पंजाबी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. अरविंद



चेतना मार्च की एक झलक



फीरा सम्मेलन में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया



जागरूकता मार्च को संबोधित करते मा. राजेंद्र भादौड़



फीरा सम्मेलन में अध्यक्ष और प्रतिनिधि

If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55

Ph. 01679-241466, Cell. 98769 53561
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....